भजन-संग्रह

(प्रथम भाग)

श्रीहरिः

भजन-संग्रह

(प्रथम भाग)

संग्रहकर्ता

वियोगी हरि

मूल्य =) दो आना
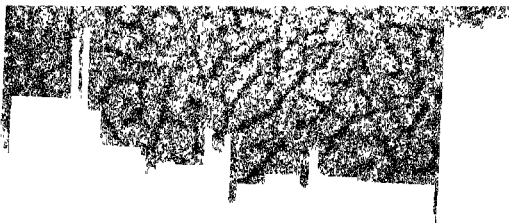
ॐ

❊ भजन-संग्रह ❊

मूल्य =) दो आना

सं० १९८८ प्र० सं० ५०००
सं० १९८९ द्वि० सं० ५०००
सं० १९९० तृ० सं० ५०००
सं० १९९१ च० सं० ५०००
सं० १९९४ पं० सं० ५०००

मुद्रक तथा प्रकाशक—
घनश्यामदास जालान
गीताप्रेस, गोरखपुर ।

श्रीहरिः

वक्तव्य

भजन-संग्रहके इस पहले भागमें गोसाईं तुलसीदास, महात्मा सूरदास और सन्तवर कबीरदासके पदोंका संक्षिप्त संकलन किया गया है। भाषाके भक्ति-साहित्यमें इन तीनों ही महात्माओंकी दिव्य बानियाँ अनुपम हैं। तुलसीके भी पद अद्वितीय हैं, सूरकी भी बानी अलौकिक है और कबीरके भी शब्द अनूठे हैं। एकके भजनोंसे हम भगवान् रामके चरणोंपर अपना अहंकार चढ़ा देते हैं, दूसरेके पदोंसे हम प्यारे कृष्णकी विश्व-विमोहिनी लीलाका रसानुभव प्राप्त करते हैं और तीसरेके शब्दोंसे हम सिरजनहार साईंके सामने मानो अपनी लाजका पट हटा देते हैं। इन पदोंको पढ़कर, गाकर और सुनकर हमारे मनको विश्राम

मिलता है, हृदय रस-प्लावित होता है और आत्मा आनन्दातिरेकसे नाचने लगती है। तब फिर तुलसीके विनयके भव्य भजनोंपर, सूरके वात्सल्यके पुनीत पदोंपर और कबीरके विराग-अनुरागके हृदय-वेधक शब्दोंपर किसकी श्रद्धा और भक्ति न होगी ?

हम संसारबद्ध जीवोंको इतना अवकाश कहाँ, जो इन महात्माओंकी समग्र बानियोंका पवित्र पारायण कर सकें ? इसलिये इस संग्रहमें थोड़े-से पदोंका संकलन किया गया है। अच्छा हो, कि इनका रस लेकर हमारी लोभ-प्रवृत्ति जागे और हम सम्पूर्ण बानियोंका आनन्द लेनेको प्रेम-विह्वल हो जायँ।

मोहननिवास,
पन्ना

वियोगी हरि

॥ श्रीहरिः ॥

अकारादि-क्रमसे विषय-सूची

गोसाईं श्रीतुलसीदासजी

श्रीसूरदासजी

भजन		पृष्ठ-संख्या
नैहरवा हमकाँ न भावै	(प्रेम)	१८९
प्रीति लगी तुव नामकी	(,,)	१९३
बाबू ऐसो है संसार तिहारो	(प्रकीर्ण)	२०२
बीत गये दिन भजन बिना रे !	(चेतावनी)	१८६
भजो रे भैया राम गोविंद हरी	(नाम-महिमा)	१८४
मत कर मोह तू	(नाम)	१८५
मन तोहे किहि बिध मैं समझाऊँ	(चेतावनी)	१८३
मन लागो मेरो यार फकीरीमें	(वैराग्य)	१९४
माया महा ठगिनि हम जानी	(चेतावनी)	१८६
मैं केहि समुझावों सब जग अंधा	(,,)	१८७
या बिधि मनको लगावै	(वैराग्य)	१९६
रमैयाकी दुलहिन लूटा बजार	(प्रकीर्ण)	२००
रस गगन गुफामें अजर झरै	(वेदान्त)	१९१
रहना नहिं देस बिराना है	(चेतावनी)	१८५
हमकाँ ओढ़ावै चदरिया	(वैराग्य)	१९६
हमन है इश्क मस्ताना	(प्रेम)	१९०
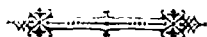
ॐ श्रीपरमात्मने नमः

भजन-संग्रह

(प्रथम भाग)

गोसाईं तुलसीदासजी

स्तुति

(१) राग बिलावल

गाइये गनपति जगबन्दन ।

संकर-सुवन भवानी-नन्दन ॥ १ ॥

सिद्धि-सदन, गजबदन, बिनायक ।

कृपा-सिंधु, सुंदर सब लायक ॥ २ ॥

मोदक-प्रिय, मुद-मंगल-दाता ।

बिद्या-बारिधि, बुद्धि-बिधाता ॥ ३ ॥

माँगत तुलसिदास कर जोरे ।

बसहिं रामसिय मानस मोरे ॥ ४ ॥

नाम

(२) राग भैरव

राम जपु, राम जपु, राम जपु, बावरे ।
घोर-भव-नीर-निधि नाम निज नाव रे ॥ १ ॥
एक ही साधन सब रिद्धि सिद्धि साधि रे ।
ग्रसे कलिरोग जोग संजम समाधि रे ॥ २ ॥
भलो जो है, पोच जो है, दाहिनो जो बाम रे ।
राम-नाम ही सों अंत सबहीको काम रे ॥ ३ ॥
जग नभ-बाटिका रही है फलि फूलि रे ।
धुवाँ कैसे धौरहर देखि तू न भूलि रे ॥ ४ ॥
राम-नाम छाँड़ि जो भरोसो करै और रे ।
तुलसी परोसो त्यागि माँगै कूर कौर रे ॥ ५ ॥

(३) राग भैरव

राम राम रटु, राम राम रटु,
राम राम जप जीहा ।

रामनाम-नवनेह-मेहको,
मन ! हठि होहि पपीहा ॥ १ ॥
सब साधन-फल कूप सरित सर,
सागर-सलिल निरासा ।
रामनाम-रति-स्वाति-सुधा-सुभ-
सीकर प्रेम-पियासा ॥ २ ॥
गरजि तरजि पाषान बरषि पबि,
प्रीति परखि जिय जानै ।
अधिक-अधिक अनुराग उमँग उर,
पर परमिति पहिचानै ॥ ३ ॥
रामनाम-गति, रामनाम-मति,
रामनाम अनुरागी ।
ह्वै गये, हैं, जे होहिंगे, त्रिभुवन,
तेइ गनियत बड़भागी ॥ ४ ॥
एक अंग मग अगम गवन कर,
बिलमु न छिन छिन छाहैं ।

तुलसी हित अपनो अपनी दिसि
निरुपधि, नेम निबाहैं ॥ ५ ॥

(४) राग कल्याण

भरोसो जाहि दूसरो सो करो ।
मोको तो रामको नाम कलपतरु,
कलि कल्यान फरो ॥ १ ॥
करम उपासन ग्यान बेदमत,
सो सब भाँति खरो ।
मोहिं तो सावनके अंधहि ज्यों,
सूझत हरो हरो ॥ २ ॥
चाटत रहेउँ स्वान पातरि ज्यों
कबहुँ न पेट भरो ।
सो हौं सुमिरत नाम-सुधारस,
पेखत परुसि धरो ॥ ३ ॥
स्वारथ औ परमारथहूको,

नहिं कुञ्जरो नरो ।
सुनियत सेतु पयोधि पषानन्हि,
करि कपि-कटक तरो ॥ ४ ॥
प्रीति प्रतीति जहाँ जाकी तहँ,
ताको काज सरो ।
मेरे तो माय बाप दोउ आखर,
हौं सिसु-अरनि अरो ॥ ५ ॥
संकर साखि जो राखि कहउँ कछु,
तौ जरि जीह गरो ।
अपनो भलो रामनामहिं ते,
तुलसिहि समुझि परो ॥ ६ ॥

(५)

रुचिर रसना तू राम राम क्यों न रटत ।
सुमिरत सुख सुकृत बढ़त अघ अमंगल घटत ॥
बिनु स्रम कलि-कलुष-जाल, कटु कराल कटत ।
दिनकरके उदय जैसे तिमिर-तोम फटत ॥

जोग जाग जप विराग तप सुतीर्थ अटत ।
बाँधिबेको भव-गयन्द रजकी रजु बटत ॥
परिहरि सुर-मुनि सुनाम गुंजा लखि लटत ।
लालच लघु तेरो लखि तुलसि तोहि हटत ॥

(६)

कलि नाम काम तरु रामको ।
दलनिहार दारिद दुकाल दुख,
दोष घोर घन घामको ॥ १ ॥
नाम लेत दाहिनो होत मन,
बाम विधाता बामको ।
कहत मुनीस महेस महातम,
उलटे सूधे नामको ॥ २ ॥
भलो लोक-परलोक तासु
जाके बल ललित-ललामको ।
तुलसी जग जानियत नामते
सोच न कूच मुकामको ॥ ३ ॥

(७)

पावन प्रेम रामचरन कमल जनम लाहु परम ।
राम-नाम लेत होत, सुलभ सकल धरम ॥
जोग मख बिबेक बिरति, बेद-बिदित करम ।
करिबे कहँ कटु कठोर, सुनत मधुर नरम ॥
तुलसी सुनि, जानि बूझि, भूलहि जनि भरम ।
तेहि प्रभुको तू सरन होहि, जेहि सबकी सरम ॥

(८) राग नट

नाहिन भजिबे जोग बियो ।
श्रीरघुबीर समान आन को
पूरन कृपा हियो ॥
कहहु कौन सुर सिला तारि पुनि
केवट मीत कियो ? ।
काने गीध अधमको पितु ज्यों
निज कर पिण्ड दियो ? ॥

कौन देव सबरीके फल करि
भोजन सलिल पियो ? ।
बालित्रास-बारिधि बूड़त कपि
केहि गहि बाँह लियो ? ॥
भजन-प्रभाउ बिभीषन भाष्यौ
सुनि कपि-कटक जियो ।
तुलसिदासको प्रभु कोसलपति
सब प्रकार बरियो ॥

विनय

(९) राग धनाश्री

यह बिनती रघुबीर गुसाईं ।
और आस बिस्वास भरोसो,
हरौ जीव-जड़ताई ॥ १ ॥
चहौं न सुगति, सुमति, संपति कछु,
रिधि सिधि बिपुल बड़ाई ।

हेतु-रहित अनुराग रामपद,
बढ़ु अनुदिन अधिकाई ॥ २ ॥
कुटिल करम लै जाइ मोहि,
जहँ जहँ अपनी बरियाई ।
तहँ तहँ जनि छिन छोह छाँड़िये,
कमठ-अण्डकी नाईं ॥ ३ ॥
यहि जगमें जहँलगि या तनुकी,
प्रीति प्रतीति सगाई ।
ते सब तुलसिदास प्रभु ही सों,
होहिं सिमिटि इक ठाईं ॥ ४ ॥

(१०) राग पीलू

रघुबर तुमको मेरी लाज ।
सदा सदा मैं सरन तिहारी
तुमहि गरीबनिवाज ॥
पतित-उधारन बिरद तुम्हारो,
स्रवनन सुनी अवाज ।

हौं तो पतित पुरातन कहिये,
पार उतारो जहाज ॥
अघ-खंडन दुख-भंजन जनके,
यही तिहारो काज ।
तुलसिदासपर किरपा कीजै,
भगति-दान देहु आज ॥

(११) राग धनाश्री

ऐसी मूढ़ता या मनकी ।
परिहरि राम-भगति सुरसरिता
आस करत ओस कनकी ॥ १ ॥
धूमसमूह निरखि चातक ज्यों,
तृषित जानि मति घनकी ।
नहिं तहँ सीतलता न बारि पुनि
हानि होत लोचनकी ॥ २ ॥
ज्यों गच-काँच बिलोकि सेन जड़
छाँह आपने तनकी ।

टूटत अति आतुर अहार बस,

छति बिसारि आननकी ॥ ३ ॥

कहँलौं कहौं कुचाल कृपानिधि

जानत हौ गति जनकी ।

तुलसिदास प्रभु हरहु दुसह दुख

करहु लाज निज पनकी ॥ ४ ॥

(१२) राग धनाश्री

जाउँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे ।

काको नाम पतित-पावन जग,

केहि अति दीन पियारे ॥ १ ॥

कौने देव बराइ बिरद-हित,

हठि-हठि अधम उधारे ।

खग, मृग, ब्याध, पषान, बिटप जड़,

जवन कवन सुर तारे ॥ २ ॥

देव, दनुज, मुनि, नाग, मनुज सब

माया-बिबस बिचारे ।

तिनके हाथ दास तुलसी प्रभु,
कहा अपनपौ हारे ॥ ३ ॥

(१३) राग धनाश्री

मेरो मन हरिजू ! हठ न तजै ।
निसिदिन नाथ देउँ सिख बहु बिधि,
करत सुभाउ निजै ॥ १ ॥
ज्यों जुवती अनुभवति प्रसव अति
दारुन दुख उपजै ।
ह्वै अनुकूल बिसारि सूल सठ,
पुनि खल पतिहिं भजै ॥ २ ॥
लोलुप भ्रमत गृहपसु ज्यौं जहँ तहँ,
सिर पदत्रान बजै ।
तदपि अधम बिचरत तेहि मारग,
कबहुँ न मूढ़ लजै ॥ ३ ॥
हौं हारयौ करि जतन बिबिध बिधि,
अतिसै प्रबल अजै ।

तुलसिदास बस होइ तबहिं जब,
प्रेरक प्रभु बरजै ॥ ४ ॥

(१४) राग बिलास

हे हरि, कवन जतन भ्रम भागै।
देखत, सुनत, बिचारत, यह मन,
निज सुभाउ नहिं त्यागै ॥ १ ॥
भक्ति, ग्यान, बैराग्य सकल
साधन यहि लागि उपाई।
कोउ भल कहउ देउ कछु कोउ असि
बासना हृदयते न जाई ॥ २ ॥
जेहि निसि सकल जीव सूतहिं तव
कृपापात्र जन जागै।
निज करनी बिपरीत देखि मोहि,
समुझि महाभय लागै ॥ ३ ॥
जद्यपि भग्न मनोरथ बिधिबस
सुख इच्छित दुख पावै।

चित्रकार कर हीन जथा

स्वारथ बिनु चित्र बनावै ॥ ४ ॥

हृषीकेस सुनि नाम जाउँ बलि

अति भरोस जिय मोरे ।

तुलसिदास इन्द्रिय-सम्भव दुख,

हरे बनिहि प्रभु तोरे ॥ ५ ॥

(१५) राग सोरठ

ऐसो को उदार जगमाहीं ।

बिनु सेवा जो द्रवै दीनपर,

राम सरिस कोउ नाहीं ॥ १ ॥

जो गति जोग बिराग जतन करि,

नहिं पावत मुनि ग्यानी ।

सो गति देत गीध सबरी कहँ,

प्रभु न बहुत जिय जानी ॥ २ ॥

जो संपति दस सीस अरपि करि,

रावन सिव पहँ लीन्हीं ।

सो सम्पदा बिभीषन कहँ अति,
सकुच-सहित हरि दीन्हीं ॥ ३ ॥
तुलसिदास सब भाँति सकल सुख
जो चाहसि मन मेरो ।
तौ भजु राम, काम सब पूरन,
करहिं कृपानिधि तेरो ॥ ४ ॥

(१६) राग गौरी

श्रीरामचन्द्र कृपालु भजु मन,
हरण-भव-भय दारुणं ।
नवकञ्ज-लोचन, कञ्ज-मुख, कर-
कञ्ज, पद कञ्जारुणं ॥ १ ॥
कन्दर्प-अगणित-अमित-छबि,
नव-नील-नीरद सुन्दरं ।
पट पीत मानहुँ तड़ित रुचि शुचि
नौमि जनक-सुता-वरं ॥ २ ॥

भजु दीनबन्धु दिनेश दानव-
दैत्य-वंश-निकन्दनं ।
रघुनन्द आनँद-कन्द कोसल-
चन्द दशरथ-नन्दनं ॥ ३ ॥
शिर मुकुट कुण्डल तिलक चारु,
उदार-अंग-विभूषणं ।
आजानु-भुज-शर-चाप-धर,
संग्राम-जित खरदूषणं ॥ ४ ॥
इति वदति तुलसीदास, शंकर-
शेष-मुनि-मन-रञ्जनं ।
मम हृदय-कञ्ज निवास कुरु,
कामादि-खल-दल-गञ्जनं ॥ ५ ॥

(१७)

मैं हरि, पतित-पावन सुने ।
मैं पतित, तुम पतित-पावन, दोउ बानक बने ॥

ब्याध गनिका गज अजामिल, साखि निगमनि भने ।
और अधम अनेक तारे, जात कापै गने ॥
जानि नाम अजानि लीन्हें, नरक जमपुर मने ।
दास तुलसी सरन आयो राखिये अपने ॥

(१८)

और काहि माँगिये, को माँगिबो निवारै ।
अभिमत दातार कौन, दुख-दरिद्र दारै ॥
धरम धाम राम काम-कोटि-रूप रूरो ।
साहब सब बिधि सुजान, दान खड्ग सूरो ॥
सुसमय दिन द्वै निसान सबके द्वार बाजै ।
कुसमय दसरथके दानि ! तैं गरीब निवाजै ॥
सेवा बिनु गुन बिहीन दीनता सुनाये ।
जे जे तैं निहाल किये फूले फिरत पाये ॥
तुलसिदास जाचक-रुचि जानि दान दीजै ।
रामचंद्र चंद्र तू, चकोर मोहि कीजै ॥

(१९)

कहु केहि कहिये कृपानिधे !
भव-जनित बिपति अति ।
इंद्रिय सकल बिकल सदा,
निज निज सुभाउ रति ॥ १ ॥
जे सुख संपति सरग नरक
संतत सँग लागी ।
हरि ! परिहरि सोइ जतन
करत मन मोर अभागी ॥ २ ॥
मैं अति दीन, दयालु देव,
सुनि मन अनुरागे ।
जो न द्रवहु रघुबीर धीर
काहे न दुख लागे ॥ ३ ॥
जद्यपि मैं अपराध-भवन,
दुख-समन मुरारे ।
तुलसिदास कहँ आस यहै
बहु पतित उधारे ॥ ४ ॥

(२०)

मेरे रावरिये गति रघुपति है बलि जाउँ ।
निलज नीच निर्गुन निर्धन कहँ,
जग दूसरो न ठाकुर ठाउँ ॥१॥
हैं घर घर बहु भरे सुसाहिब,
सूझत सबनि आपनो दाउँ ।
बानर-बन्धु बिभीषन-हित बिनु,
कोसलपाल कहूँ न समाउँ ॥२॥
प्रनतारति-भंजन जन-रंजन,
सरनागत पबि-पंजर नाउँ ।
कीजै दास दास तुलसी अब,
कृपासिंधु, बिनु मोल बिकाउँ ॥३॥

(२१)

देव ! दूसरो कौन दीनको दयालु ।
सीलनिधान सुजान-सिरोमनि,
सरनागत-प्रिय प्रनत-पालु ॥१॥

को समरथ सर्वग्य सकल प्रभु,
सिव-सनेह-मानस-मरालु ।
को साहिब किये मीत प्रीतिबस
खग निसिचर कपि भील-भालु ॥२॥
नाथ, हाथ माया-प्रपंच सब,
जीव-दोष-गुन-करम-कालु ।
तुलसिदास भलो पोच रावरो,
नेकु निरखि कीजिये निहालु ॥३॥

(२२)

रघुबर ! रावरि यहै बड़ाई ।
निदरि गनी आदर गरीबपर,
करत कृपा अधिकाई ॥१॥
थके देव साधन करि सब,
सपनेहुँ नहिं देत दिखाई ।
केवट कुटिल भालु कपि कौनप,
कियो सकल सँग भाई ॥२॥

मिलि मुनिबृन्द फिरत दंडक बन,
सो चरचौ न चलाई ।
बारहि बार गीध सबरीकी,
बरनत प्रीति सुहाई ॥३॥
स्वान कहे तें कियो पुर बाहिर,
जती गयन्द चढ़ाई ।
तिय-निंदक मतिमंद प्रजा रज
निज नय नगर बसाई ॥४॥
यहि दरबार दीनको आदर,
रीति सदा चलि आई ।
दीनदयालु दीन तुलसीकी
काहे न सुरति कराई ॥५॥

(२३)

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो ।
श्रीरघुनाथ-कृपालु-कृपा तें
संत-सुभाव गहौंगो ॥

जथा लाभ संतोष सदा,
काहूसों कछु न चहौंगो।
परहित-निरत निरंतर मन क्रम
बचन नेम निबहौंगो॥
परुष बचन अति दुसह स्रवन सुनि
तेहि पावक न दहौंगो।
बिगत-मान, सम सीतल मन,
पर-गुन, नहिं दोष कहौंगो॥
परिहरि देहजनित चिन्ता,
दुख-सुख समबुद्धि सहौंगो।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि,
अबिचल हरि-भगति लहौंगो॥

(२४) राग केदारा

रघुपति बिपति-दवन।
परम कृपालु प्रनत-प्रतिपालक पतित-पवन॥

क्रूर कुटिल कुलहीन दीन अति मलिन जवन ।
सुमिरत नाम राम पठये सब अपने भवन ॥
गज पिंगला अजामिल-से खल गनै धौं कवन ।
तुलसिदास प्रभु केहि न दीन्हि गति जानकी-रवन ॥

(२५)

मनोरथ मनको एकै भाँति ।
चाहत मुनि-मन-अगम सुकृत-फल,
मनसा अघ न अघाति ॥१॥
करमभूमि कलि जनम कुसंगति,
मति बिमोह-मद-माति ।
करत कुजोग कोटि क्यों पैयत
परमारथ पद साँति ॥२॥
सेइ साधु गुरु, सुनि पुरान स्रुति
बूझ्यों राग बाजी ताँति ।
तुलसी प्रभु सुभाउ सुरतरु सो
ज्यों दरपन मुख काँति ॥३॥

(२६)

दीनको दयालु दानि दूसरो न कोऊ ।
जासों दीनता कहौं हौं देखौं दीन सोऊ ॥ १ ॥
सुर नर मुनि असुर नाग साहब तौ घनेरे ।
तौ लौं जौ लौं रावरे न नेकु नयन फेरे ॥ २ ॥
त्रिभुवन तिहुँ काल विदित वेद वदति चारी ।
आदि अंत मध्य राम साहबी तिहारी ॥ ३ ॥
तोहि माँगि माँगनो न माँगनो कहायो ।
सुनि सुभाव सील सुजसु जाचन जन आयो ॥ ४ ॥
पाहन, पसु, बिटप, बिहँग अपने करि लीन्हें ।
महाराज दसरथके ! रंक राय कीन्हें ॥ ५ ॥
तू गरीबको निवाज, हौं गरीब तेरो ।
बारक कहिये कृपालु ! तुलसिदास मेरो ॥ ६ ॥

(२७) राग खमाज—तीन ताल

माधव, मोह-पास क्यों टूटै ।
बाहर कोटि उपाय करिय
अभ्यंतर ग्रन्थि न छूटै ॥ १ ॥

घृतपूरन कराह अंतरगत
ससि-प्रतिबिंब दिखावै ।
ईंधन अनल लगाय कल्पसत,
औंटत नास न पावै ॥ २ ॥
तरु-कोटर महँ बस बिहंग
तरु काटे मरै न जैसे ।
साधन करिय बिचार हीन मन,
सुद्ध होइ नहिं तैसे ॥ ३ ॥
अंतर मलिन, बिषय मन अति, तन
पावन करिय पखारे ।
मरइ न उरग अनेक जतन
बलमीकि बिबिध बिधि मारे ॥ ४ ॥
तुलसिदास हरि-गुरु-करुना बिनु
बिमल बिबेक न होई ।
बिनु बिबेक संसार-घोरनिधि
पार न पावै कोई ॥ ५ ॥
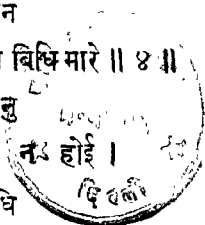
(२८)

मैं केहि कहौं बिपति अति भारी ।
श्री रघुबीर धीर हितकारी ॥ १ ॥
मम हृदय भवन प्रभु तोरा ।
तहँ बसे आइ बहु चोरा ॥ २ ॥
अति कठिन करहिं बरजोरा ।
मानहिं नहिं बिनय निहोरा ॥ ३ ॥
तम, मोह, लोभ, अहँकारा ।
मद, क्रोध, बोध-रिपु मारा ॥ ४ ॥
अति करहिं उपद्रव नाथा ।
मरदहिं मोहि जानि अनाथा ॥ ५ ॥
मैं एक, अमित बटपारा ।
कोउ सुनै न मोर पुकारा ॥ ६ ॥
भागेहु नहिं नाथ ! उबारा ।
रघुनायक, करहु सँभारा ॥ ७ ॥
कह तुलसिदास सुनु रामा ।
लूटहिं तसकर तव धामा ॥ ८ ॥

चिंता यह मोहिं अपारा ।
अपजस नहिं होइ तुम्हारा ॥ ९ ॥

(२९) राग खमाज—तीन ताल

कुटुंब तजि सरन राम ! तेरी आयो ।
तजि गढ़, लंक, महल औ मंदिर,
नाम सुनत उठि धायो ॥ ध्रु० ॥
भरी सभामें रावन बैठ्यो चरन प्रहार चलायो ।
मूरख अंध कह्यो नहिं मानै बार बार समुझायो ॥
आवत ही लंकापति कीनो, हरि हँस कंठ लगायो ।
जनम-जनमके मिटे पराभव राम-दरस जब पायो ॥
हे रघुनाथ ! अनाथके बन्धु दीन जान अपनायो ।
तुलसिदास रघुबीर-सरनतें भगति अभय पद पायो॥

(३०) राग खमाज—तीन ताल

माधव ! मो समान जग माहीं ।
सब बिधि हीन मलीन दीन अति
लीन बिषय कोउ नाहीं ॥ १ ॥

तुम सम हेतु-रहित, कृपालु,
आरतहित, ईसहि त्यागी ।
मैं दुख सोक बिकल, कृपालु,
केहि कारन दया न लागी ॥ २ ॥
नाहिंन कछु अवगुन तुम्हार,
अपराध मोर मैं माना ।
ग्यानभवन तनु दियहु नाथ
सोउ पाय न मैं प्रभु जाना ॥ ३ ॥
बेनु करील, श्रीखंड बसंतहिं
दूषन मृषा लगावै ।
साररहित हतभाग्य सुरभि
पल्लव सो कहँ कहु पावै ॥ ४ ॥
सब प्रकार मैं कठिन मृदुल हरि
दृढ बिचार जिय मोरे ।
तुलसिदास प्रभु मोह सृंखला
छुटिहि तुम्हारे छोरे ॥ ५ ॥

(३१)

सकुचत हौं अति राम कृपानिधि
क्योंकरि बिनय सुनावौं ।
सकल धरम बिपरीत करत, केहि
भाँति नाथ मन भावौं ॥ १ ॥
जानत हौं हरि रूप चराचर,
मैं हठि नैन न लावौं ।
अंजन-केस-सिखा जुवती तहँ,
लोचन-सलभ पठावौं ॥ २ ॥
स्रवननिको फल कथा तुम्हारी,
यह समुझौं, समुझावौं ।
तिन्ह स्रवननि परदोष निरन्तर,
सुनि सुनि भरि भरि तावौं ॥ ३ ॥
जेहि रसना गुन गाइ तिहारे,
बिनु प्रयास सुख पावौं ।
तेहि मुख पर-अपवाद भेक ज्यों,
रटि-रटि जनम नसावौं ॥ ४ ॥

'करहु हृदय अति बिमल बसहिं हरि',
कहि कहि सबहिं सिखावौं ।
हौं निज उर अभिमान-मोह-
मद खल-मंडली बसावौं ॥ ५ ॥
जो तनु धरि हरिपद साधहिं जन
सो बिनु काज गँवावौं ।
हाटक-घट भरि धरयो सुधागृह
तजि नभ कूप खनावौं ॥ ६ ॥
मन-क्रम-बचन लाइ कीन्हे अघ,
ते करि जतन दुरावौं ।
पर-प्रेरित इरषा बस कबहुँक,
किय कछु सुभ सो जनावौं ॥ ७ ॥
बिप्र-द्रोह जनु बाँट परयो,
हठि सबसों बैर बढ़ावौं ।
ताहू पर निज मति-बिलास
सब संतन माँझ गनावौं ॥ ८ ॥

निगम सेस सारद निहोरि जो,
अपने दोष कहावौं ।
तौ न सिराहि कलप सत लगि प्रभु,
कहा एक मुख गावौं ॥ ९ ॥
जो करनी आपनी बिचारौं,
तौ कि सरन हौं आवौं ।
मृदुल सुभाव सील रघुपतिको,
सो बल मनहिं दिखावौं ॥१०॥
तुलसिदास प्रभु सो गुन नहिं जेहि,
सपनेहुँ तुमहिं रिझावौं ।
नाथ-कृपा भवसिंधु धेनुपद
सम, जो जानि सिरावौं ॥११॥

(३२)

रामचंद्र रघुनायक तुमसों
हौं बिनती केहि भाँति करौं ।
अघ अनेक अवलोकि आपने,
अनघ नाम अनुमानि डरौं ॥ १ ॥

पर-दुख दुखी सुखी पर-सुखते,

संत-सील नहिं हृदय धरौं ।

देखि आनकी बिपति परम सुख,

सुनि संपति बिनु आगि जरौं ॥ २ ॥

भगति बिराग ग्यान साधन कहि

बहु बिधि डहँकत लोग फिरौं ।

सिव-सरबस सुखधाम नाम तव,

बेंचि नरकप्रद उदर भरौं ॥ ३ ॥

जानत हौं निज पाप जलधि जिय

जल-सीकर सम सुनत लरौं ।

रज-सम पर अवगुन सुमेरु करि,

गुन गिरि-सम रजतें निदरौं ॥ ४ ॥

नाना बेष बनाय दिवस-निसि,

पर-बित जेहि तेहि जुगुति हरौं ।

एकौ पल न कबहुँ अलोल चित,

हित दै पद-सरोज सुमिरौं ॥ ५ ॥

जो आचरन बिचारहु मेरो,
कलप कोटि लगि औटि मरौं ।
तुलसिदास प्रभु कृपा बिलोकनि,
गोपद-ज्यौं भवसिंधु तरौं ॥ ६ ॥

(२२)

हरि ! तुम बहुत अनुग्रह कीन्हों ।
साधन-धाम बिबुध-दुरलभ तनु,
मोहि कृपा करि दीन्हों ॥ १ ॥
कोटिहुँ मुख कहि जात न प्रभुके,
एक एक उपकार ।
तदपि नाथ कछु और माँगिहौं,
दीजै परम उदार ॥ २ ॥
बिषय-बारि मन-मीन भिन्न नहिं
होत कबहुँ पल एक ।
ताते सहौं बिपति अति दारुन,
जनमत जोनि अनेक ॥ ३ ॥

कृपा-डोरि बनसी पद अंकुस,

परम प्रेम-मृदु-चारो ।

एहि बिधि बेधि हरहु मेरो दुख,

कौतुक राम तिहारो ॥ ४ ॥

हैं स्रुति-बिदित उपाय सकल सुर,

केहि केहि दीन निहोरै ।

तुलसिदास यहि जीव मोह-रजु,

जोइ बाँध्यो सोइ छोरै ॥ ५ ॥

(३४)

ऐसे राम दीन-हितकारी ।

अतिकोमल करुनानिधान बिनु

कारन पर-उपकारी ॥ १ ॥

साधन-हीन दीन निज अघ-बस,

सिला भई मुनि-नारी ।

गृहतें गवनि परसि पद पावन,

घोर सापतें तारी ॥ २ ॥

हिंसारत निषाद तामस बपु,
पसु-समान बनचारी ।
भेंट्यो हृदय लगाइ प्रेमबस,
नहिं कुल जाति बिचारी ॥ ३ ॥
जद्यपि द्रोह कियो सुरपति-सुत,
कहि न जाय अति भारी ।
सकल लोक अवलोकि सोकहत,
सरन गये भय टारी ॥ ४ ॥
बिहँग जोनि आमिष अहारपर,
गीध कौन ब्रतधारी ।
जनक-समान क्रिया ताकी निज
कर सब भाँति सँवारी ॥ ५ ॥
अधम जाति सबरी जोषित जड़,
लोक-बेद तें न्यारी ।
जानि प्रीत, दै दरस कृपानिधि,
सोउ रघुनाथ उधारी ॥ ६ ॥

कपि सुग्रीव बंधु-भय-ब्याकुल,
आयो सरन पुकारी ।
सहि न सके दारुन दुख जनके,
हत्यो बालि, सहि गारी ॥ ७ ॥
रिपुको अनुज बिभीषन निसिचर,
कौन भजन अधिकारी ।
सरन गये आगे ह्वै लीन्हों
भेंट्यो भुजा पसारी ॥ ८ ॥
असुभ होइ जिनके सुमिरे तें
बानर रीछ बिकारी ।
बेद-बिदित पावन किये ते सब,
महिमा नाथ तुम्हारी ॥ ९ ॥
कहँ लगि कहौं दीन अगनित
जिन्हकी तुम बिपति निवारी ।
कलि-मल-ग्रसित दास तुलसीपर,
काहे कृपा बिसारी ? ॥ १० ॥

दैन्य

(३५) राग आसावरी

लाज न आवत दास कहावत ।
सो आचरन बिसारि सोच तजि,
जो हरि तुमकहँ भावत ॥ १ ॥
सकल संग तजि भजत जाहि मुनि,
जप तप जाग बनावत ।
मो सम मंद महाखल पाँवर,
कौन जतन तेहि पावत ॥ २ ॥
हरि निरमल, मल-ग्रसित हृदय,
असमंजस मोहि जनावत ।
जेहि सर काक कंक बक सूकर,
क्यों मराल तहँ आवत ? ॥ ३ ॥
जाकी सरन जाइ कोबिद,
दारुन त्रयताप बुझावत ।

तहूँ गये मद मोह लोभ अति,

सरगहुँ मिटत न सावत ॥ ४ ॥

भव-सरिता कहँ नाउ संत, यह

कहि औरनि समुझावत ।

हौं तिनसों हरि परम बैर करि,

तुमसों भलो मनावत ॥ ५ ॥

नाहिन और ठौर मो कहँ,

तातें हठि नातो लावत ।

राखु सरन उदार-चूड़ामनि,

तुलसिदास गुन गावत ॥ ६ ॥

(३६) राग बागेश्री

कौन जतन बिनती करिये ।

निज आचरन बिचारि हारि हिय,

मानि जानि डरिये ॥ १ ॥

जेहि साधन हरि द्रवहु जानि जन,

सो हठि परिहरिये ।

जाते बिपति-जाल निसिदिन दुख,
तेहि पथ अनुसरिये ॥ २ ॥
जानत हूँ मन बचन करम
परहित कीन्हें तरिये ।
सो बिपरीत, देखि परसुख
बिनु कारन ही जरिये ॥ ३ ॥
स्रुति पुरान सबको मत यह
सतसंग सुदृढ़ धरिये ।
निज अभिमान मोह ईर्षा बस,
तिनहिं न आदरिये ॥ ४ ॥
संतत सोइ प्रिय मोहि सदा,
जाते भवनिधि परिये ।
कहौ अब नाथ ! कौन बलतें,
संसार-सोक हरिये ॥ ५ ॥
जब-कब निज करुना-सुभावतें,
द्रवहु तौ निस्तरिये ।

तुलसिदास बिस्वास आन नहिं,
कत पचि पचि मरिये ॥ ६ ॥

(३७) राग कल्याण

जाउँ कहाँ, ठौर है कहाँ
देव ! दुखित दीनको ।
को कृपालु स्वामि सारिखो राखै
सरनागत सब अंग बल-बिहीनको ॥ १ ॥
गनिहिं गुनिहिं साहिब लहै,
सेवा समीचीनको ।
अधम अगुन आलसिनको पालिबो
फबि आयो रघुनायक नवीनको ॥ २ ॥
मुखकै कहा कहौं बिदित है
जीकी प्रभु प्रबीनको ।
तिहूँ काल, तिहूँ लोकमें एक टेक
रावरी तुलसीसे मन मलीनको ॥ ३ ॥

(३८) राग टोडी

तू दयालु, दीन हौं, तू दानि, हौं भिखारी ।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पापपुंजहारी ॥ १ ॥
नाथ तू अनाथको, अनाथ कौन मोसो ?
मो समान आरत नहिं, आरतिहर तोसो ॥ २ ॥
ब्रह्म तू, हौं जीव हौं, तू ठाकुर, हौं चेरो ।
तात, मात, गुरु, सखा तू, सब बिधि हितु मेरो ॥ ३ ॥
तोहि मोहि नाते अनेक, मानिये जो भावै ।
ज्यों त्यों तुलसी कृपालु, चरन-सरन पावै ॥ ४ ॥

(३९) राग ललित

खोटो खरो रावरो हौं, रावरे सों झूठ क्यों
कहौंगो, जानौ सबहीके मनकी ।
करम बचन हिये कहौं न कपट किये,
ऐसी हठि जैसी गाँठि पानी परे सनकी ॥
दूसरो भरोसो नाहिं, बासना उपासनाको,
बासव, बिरंचि, सुर-नर-मुनि-गनकी ।

स्वारथके साथी मेरे हाथी स्वान लेवा देई,
काहू को न पीर रघुबीर दीनजनकी ॥
साँप सभा साबर लबार भये देव दिव्य,
दुसह साँसति कीजै आगे ही या तनकी ।
साँचे परौं पाऊँ पान, पंचनमें पन प्रमान,
तुलसी चातक आस राम स्याम घनकी ॥

(४०)

तऊ न मेरे अघ अवगुन गनिहैं ।
जौ जमराज काज सब परिहरि,
इहै ख्याल उर अनिहैं ॥ १ ॥
चलिहैं छूटि पुंज पापिनके
असमंजस जिय जनिहैं ।
देखि खलल अधिकार प्रभूसों,
मेरी भूरि भलाई भनिहैं ॥ २ ॥
हँसि करिहैं परतीति भक्तकी,
भक्त-सिरोमनि मनिहैं ।

ज्यों-त्यों तुलसिदास कोसलपति,
अपनायहि पर बनिहैं ॥ ३ ॥

(४१)

जो पै जिय धरिहौ अवगुन जनके ।
तौ क्यों कटत सुकृत-नखते मो पै,
बिपुल बृंद अघ-बनके ॥ १ ॥
कहिहै कौन कलुष मेरे कृत,
कर्म बचन अरु मनके ।
हरिहैं अमित सेष सारद स्रुति,
गिनत एक इक छनके ॥ २ ॥
जो चित चढ़े नाम-महिमा निज,
गुनगन पावन पनके ।
तौ तुलसिहिं तारिहौ बिप्र ज्यों,
दसन तोरि जम-गनके ॥ ३ ॥

(४२)

केहू भाँति कृपासिंधु मेरी ओर हेरिए।
मोको और ठौर न, सुटेक एक तेरिए॥
सहस सिलातें अति जड़ मति भई है।
कासो कहौं, कौने गति पाहनहिं दई है॥
पद-राग-जाग चहौं कौसिक ज्यों कियो हौं।
कलि-मल खल देखि भारी भीति भियो हौं॥
करम-कपीस बालि-बली-त्रास-त्रस्यो हौं।
चाहत अनाथ-नाथ तेरी बाँह बस्यो हौं॥
महा-मोह रावन बिभीषन ज्यों हयो हौं।
त्राहि तुलसीस! त्राहि तिहूँ ताप तयो हौं॥

(४३)

ताहि ते आयो सरन सबेरे।
ग्यान बिराग भगति साधन कछु
सपनेहुँ नाथ न मेरे॥ १॥

लोभ मोह मद काम क्रोध रिपु
फिरत रैनि दिन घेरे ।
तिनहिं मिले मन भयो कुपथ-रत
फिरै तिहारेहि फेरे ॥ २ ॥
दोष-निलय यह बिषय सोक-प्रद
कहत संत स्रुति टेरे ।
जानत हूँ अनुराग तहाँ अति
सो हरि तुम्हरेहि प्रेरे ॥ ३ ॥
बिष पियूष सम करहु अगिनि हिम,
तारि सकहु बिनु बेरे ।
तुम सम ईस कृपालु परम हित
पुनि न पाइहौं हेरे ॥ ४ ॥
यह जिय जानि रहौं सब तजि
रघुबीर भरोसे तेरे ।
तुलसिदास यह बिपति बाँगुरो
तुमहिं सों बनै निबेरे ॥ ५ ॥

(४४)

है प्रभु ! मेरोई सब दोसु ।

सीलसिंधु, कृपालु, नाथ अनाथ, आरत-पोसु ॥

वेष बचन बिराग मन अघ अवगुननिको कोसु ।

राम ! प्रीति-प्रतीति पोली, कपट-करतब ठोसु ॥

राग-रंग कुसंग ही सों साधु-संगति रोसु ।

चहत केहरि-जसहिं सेइ सृगाल ज्यों खरगोसु ॥

संभु सिखवन रसन हूँ नित राम-नामहिं घोसु ।

दंभहू कलिनाम कुंभज सोच-सागर-सोसु ॥

मोद-मंगल-मूल अति अनुकूल निज निरजोसु ।

रामनाम प्रभाव सुनि तुलसिहुँ परम परितोसु ॥

(४५)

कैसे देउँ नाथहिं खोरि ।

काम-लोलुप भ्रमत मन हरि ! भगति परिहरि तोरि ॥

बहुत प्रीति पुजाइबे पर, पूजिबे पर थोरि ।
देत सिख सिखयो न मानत, मूढ़ता अस मोरि ॥
किये सहित सनेह जे अघ हृदय राखे चोरि ।
संग-बस किये सुभ सुनाये सकल लोक निहोरि ॥
करौं जो कछु धरौं सचि-पचि सुकृत-सिला बटोरि ।
पैठि उर बरबस दयानिधि ! दंभ लेत अँजोरि ॥
लोभ मनहिं नचाव कपि ज्यों गरे आसा-डोरि ।
बात कहौं बनाइ बुध ज्यों, बर बिराग निचोरि ॥
एतेहुँ पर तुम्हरो कहावत, लाज अँचई घोरि ।
निलजता पर रीझि रघुबर, देहु तुलसिहिं छोरि ॥

(४६)

काहे ते हरि मोहिं बिसारो ।
जानत निज महिमा मेरे अघ,
तदपि न नाथ सँभारो ॥ १ ॥
पतित-पुनीत दीनहित असरन-
सरन कहत स्रुति चारो ।

हौं नहिं अधम सभीत दीन ?
किधौं बेदन मृषा पुकारो ? ॥ २ ॥
खग-गनिका-गज-ब्याध-पाँति जहँ,
तहँ हौंहूँ बैठारो ।
अब केहि लाज कृपानिधान !
परसत पनवारो फारो ॥ ३ ॥
जो कलिकाल प्रबल अति होतो
तुव निदेस तें न्यारो ।
तौ हरि रोष भरोस दोष गुन
तेहि भजते तजि गारो ॥ ४ ॥
मसक बिरंचि, बिरंचि मसक सम,
करहु प्रभाउ तुम्हारो ।
यह सामरथ अछत मोहिं त्यागहु,
नाथ तहाँ कछु चारो ॥ ५ ॥
नाहिन नरक परत मोकहँ डर,
जद्यपि हौं अति हारो ।

यह बड़ि त्रास दासतुलसी प्रभु,
नामहु पाप न जारो ॥ ६ ॥

(४७)

माधवजू, मोसम मंद न कोऊ ।
जद्यपि मीन पतंग हीनमति,
मोहि नहिं पूजैं ओऊ ॥ १ ॥
रुचिर रूप-आहार-बस्य उन्ह,
पावक लोह न जान्यो ।
देखत बिपति बिषय न तजत हौं,
ताते अधिक अयान्यो ॥ २ ॥
महामोह-सरिता अपार महँ,
संतत फिरत बह्यो ।
श्रीहरि-चरन-कमल-नौका तजि
फिरि फिरि फेन गह्यो ॥ ३ ॥
अस्थि पुरातन छुधित स्वान अति
ज्यों भरि मुख पकरै ।

निज ताल्लुगत रुधिर पान करि,
मन संतोष धरै ॥ ४ ॥
परम कठिन भव-व्याल-ग्रसित हौं
त्रसित भयो अति भारो ।
चाहत अभय भेक सरनागत,
खग-पति-नाथ बिसारी ॥ ५ ॥
जलचर-बृंद जाल-अंतरगत
होत सिमिटि इक पासा ।
एकहि एक खात लालच-बस,
नहिं देखत निज नासा ॥ ६ ॥
मेरे अघ सारद अनेक जुग,
गनत पार नहिं पावै ।
तुलसीदास पतित-पावन प्रभु,
यह भरोस जिय आवै ॥ ७ ॥

(४८)

यों मन कबहूँ तुमहिं न लाग्यो ।

ज्यों छल छाँड़ि सुभाव निरंतर

रहत बिषय अनुराग्यो ॥ १ ॥

ज्यों चितई परनारि, सुने

पातक-प्रपंच घर-घरके ।

त्यों न साधु, सुरसरि-तरंग-

निर्मल गुनगन रघुबरके ॥ २ ॥

ज्यों नासा सुगंधरस-बस,

रसना षटरस-रति मानी ।

राम-प्रसाद-माल, जूठनि लगि,

त्यों न ललकि ललचानी ॥ ३ ॥

चंदन-चंदबदनि-भूषन-पट

ज्यों चह पाँवर परस्यो ।

त्यों रघुपति-पद-पदुम-परस को

तनु पातकी न तरस्यो ॥ ४ ॥

ज्यों सब भाँति कुदेव कुठाकुर
सेये बपु बचन हिये हूँ ।
त्यों न राम, सुकृतग्य जे सकुचत
सकृत प्रनाम किये हूँ ॥ ५ ॥
चंचल चरन लोभ लगि लोलुप
द्वार-द्वार जग बागे ।
राम-सीय-आश्रमनि चलत त्यों
भये न स्रमित अभागे ॥ ६ ॥
सकल अंग पद-बिमुख नाथ मुख
नामकी ओट लई है ।
है तुलसिहिं परतीति एक
प्रभु-मूरति कृपामई है ॥ ७ ॥

चेतावनी

(४९) राग आसावरी

ममता तू न गई मेरे मनतें ।
पाके केस जनमके साथी,
लाज गई लोकनतें ।

तन थाके कर कंपन लागे
ज्योति गई नैननतें ॥ १ ॥
सरवन बचन न सुनत काहुके
बल गये सब इंद्रिनतें ।
टूटे दसन वचन नहिं आवत
सोभा गई मुखनतें ॥ २ ॥
कफ पित बात कंठपर बैठे
सुतहिं बुलावत करतें ।
भाइ बंधु सब परम पियारे
नारि निकारत घरतें ॥ ३ ॥
जैसे ससि-मंडल बिच स्याही
छुटै न कोटि जतनतें ।
तुलसिदास बलि जाउँ चरनते
लोभ पराये धनतें ॥ ४ ॥

(५०) राग सोरठ

जाके प्रिय न राम-बैदेही ।
सो छाँड़िये कोटि बैरी सम,
जद्यपि परम सनेही ॥ १ ॥

तज्यो पिता प्रह्लाद, बिभीषन—
बंधु भरत महतारी ।
बलि गुरु तज्यो, कंत ब्रज बनितनि
भये मुद-मंगलकारी ॥ २ ॥
नाते नेह रामके मनियत
सुहृद सुसेब्य जहाँ लौं ।
अंजन कहा आँखि जेहि फूटै
बहुतक कहौं कहाँ लौं ॥ ३ ॥
तुलसी सो सब भाँति परमहित
पूज्य प्राणतें प्यारो ।
जासों होय सनेह रामपद
एतो मतो हमारो ॥ ४ ॥

(५१) राग बिलावल

ते नर नरकरूप जीवत जग,
भव-भंजन-पद बिमुख अभागी ।

निसिबासर रुचि पाप, असुचि मन,
खल मति मलिन निगम-पथ त्यागी ॥ १ ॥
नहिं सतसंग, भजन नहिं हरिको,
स्रवन न रामकथा अनुरागी ।
सुत-बित-दार-भवन-ममता-निसि,
सोवत अति न कबहुँ मति जागी ॥ २ ॥
तुलसिदास हरि-नाम-सुधा तजि,
सठ, हठि पियत बिषय-बिष माँगी ।
सूकर-स्वान-सृगाल-सरिस जन,
जनमत जगत जननि-दुख लागी ॥ ३ ॥

(५२) राग धनाश्री

मन, माधवको नेकु निहारहि ।
सुनु सठ, सदा रंकके धन ज्यों,
छिन-छिन प्रभुहिं सँभारहि ॥ १ ॥
सोभा-सील-ग्यान-गुन-मंदिर,
सुंदर परम उदारहि ।

रंजन संत, अखिल अघ-गंजन,
भंजन बिषय बिकारहि ॥ २ ॥
जो बिनु जोग, जग्य, ब्रत, संयम
गयो चहै भव-पारहि ।
तौ जनि तुलसिदास निसिबासर
हरि-पद-कमल बिसारहि ॥ ३ ॥

(५३)

सुनु मन मूढ़ ! सिखावन मेरो ।
हरि-पद-बिमुख लह्यो न काहु सुख,
सठ ! यह समुझ सबेरो ॥ १ ॥
बिछुरे ससि रबि मन नैननितें,
पावत दुख बहुतेरो ।
भ्रमत स्रमित निसि-दिवस गगनमहँ,
तहँ रिपु राहु बड़ेरो ॥ २ ॥
जद्यपि अति पुनीत सुर-सरिता,
तिहुँ पुर सुजस घनेरो ।

तजे चरन अजहूँ न मिटत नित,
बहिबो ताहू केरो ॥ ३ ॥
छुटै न बिपति भजे बिन रघुपति,
स्रुति संदेह निबेरो ।
तुलसिदास सब आस छाँड़ि करि,
होहु राम कर चेरो ॥ ४ ॥

(५८)

कबहूँ मन बिस्राम न मान्यो ।
निसि दिन भ्रमत बिसारि सहज सुख,
जहँ-तहँ इंद्रिन तान्यो ॥ १ ॥
जदपि बिषय-सँग सह्यो दुसह दुख,
बिषम जाल अरुझान्यो ।
तदपि न तजत मूढ़, ममता बस,
जानत हूँ नहिं जान्यो ॥ २ ॥
जन्म अनेक किये नाना बिधि
कर्म कीच चित सान्यो ।

होइ न बिमल बिबेक-नीर-बिनु
बेद पुरान बखान्यो ॥ ३ ॥
निज हित नाथ पिता गुरु हरिसों
हरषि हृदय नहिं आन्यो ।
तुलसिदास कब तृषा जाय सर
खनतहिं जनम सिरान्यो ॥ ४ ॥

(५५)

रामसे प्रीतमकी प्रीति-रहित जीव जाय जियत ।
जेहि सुख सुख मानि लेत, सुख सो समुझ कियत ॥
जहँ जहँ जेहि जोनि जनम महि पताल बियत ।
तहँ तहँ तू बिषय-सुखहिं, चहत लहत नियत ॥
कत बिमोह लट्यो फट्यो, गगन मगन सियत ।
तुलसी प्रभु-सुजस गाइ, क्यों न सुधा पियत ॥

(५६) राग कान्हरा

जो मन लागै रामचरन अस ।
देह गेह सुत बित कलत्र महँ
मगन होत बिनु जतन किये जस ॥

द्वंद्वरहित गत मान ग्यान-रत

विषय-बिरत खटाइ नाना कस ।

सुखनिधान सुजान कोसलपति

ह्वै प्रसन्न कहु क्यों न होहिं बस ॥

सर्बभूतहित निर्ब्यलीक चित

भगति प्रेम दृढ़ नेम एक रस ।

तुलसिदास यह होइ तबहिं जब

द्रवै ईस जेहि हतो सीस दस ॥

(५७) राग भैरवी-तीन ताल

भज मन रामचरन सुखदाई ॥ ध्रु० ॥

जिहि चरननसे निकसी सुरसरी संकर जटा समाई ।

जटासंकरी नाम परयो है, त्रिभुवन तारन आई ॥

जिन चरननकी चरनपादुका भरत रह्यो लव लाई ।

सोइ चरन केवट धोइ लीने तब हरि नाव चलाई ॥

सोइ चरन संतन जन सेवत सदा रहत सुखदाई ।

सोइ चरन गौतमऋषि-नारी परसि परमपद पाई ॥

दंडकबन प्रभु पावन कीन्हो ऋषियन त्रास मिटाई ।
सोई प्रभु त्रिलोकके स्वामी कनकमृगा सँग धाई ॥
कपि सुग्रीव बंधु-भय-ब्याकुल तिन जय-छत्र फिराई ।
रिपुको अनुज बिभीषन निसिचर परसत लंका पाई।
सिव सनकादिक अरु ब्रह्मादिक सेष सहस मुख गाई
तुलसिदास मारुत-सुतकी प्रभु निज मुख करत बड़ाई

(५८) राग गौड सारंग-तीन ताल

अबलौं नसानी, अब न नसैहौं ।
रामकृपा भवनिसा सिरानी जागे, फिरि न डसैहौं ॥
पायो नाम चारु चिंतामनि उर करतें न खसैहौं ।
स्याम रूप सुचि रुचिर कसौटी चित कंचनहिं कसैहौं
परबस जानि हँस्यो इन इंद्रिन निज बस ह्वै न हँसैहौं
मन मधुपहिं प्रनकरि, तुलसी, रघुपतिपदकमल बसैहौं

(५९) राग पूर्वी-तीन ताल

मन पछितैहै अवसर बीते ।
दुर्लभ देह पाइ हरिपद भजु,
करम, बचन अरु हीते ॥ १ ॥
सहसबाहु दसबदन आदि नृप,
बचे न काल बलीते ।
हम हम करि धन-धाम सँवारे,
अंत चले उठि रीते ॥ २ ॥
सुत बनितादि जानि स्वारथरत,
न करु नेह सबहीते ।
अंतहुँ तोहिं तजेंगे, पामर !
तू न तजै अबहीते ॥ ३ ॥
अब नाथहिं अनुरागु जागु जड़,
त्यागु दुरासा जीते ।
बुझै न काम-अगिनि तुलसी कहुँ,
बिषयभोग बहु घीते ॥ ४ ॥

(६०)

लाभ कहा मानुष-तनु पाये।
काय-बचन-मन सपनेहु कबहुँक
घटत न काज पराये॥ १॥
जो सुख सुरपुर नरक गेह बन
आवत बिनहिं बुलाये।
तेहि सुख कहँ बहु जतन करत मन
समुझत नहिं समुझाये॥ २॥
पर-दारा, पर-द्रोह, मोह-बस
किये मूढ़ मन भाये।
गरभबास दुखरासि जातना
तीब्र बिपति बिसराये॥ ३॥
भय, निद्रा, मैथुन, अहार
सबके समान जग जाये।
सुर-दुरलभ तनु धरि न भजे हरि
मद अभिमान गवाँये॥ ४॥

गई न निज-पर-बुद्धि सुद्ध है
रहे न राम-लय लाये ।
तुलसिदास यह अवसर बीते
का पुनि के पछिताये ॥ ५ ॥

भक्ति-प्रेम

(६१)

जानकी-जीवनकी बलि जैहों ।
चित कहै, रामसीय पद परिहरि
अब न कहूँ चलि जैहों ॥ १ ॥
उपजी उर प्रतीति सुपनेहुँ सुख,
प्रभु-पद-बिमुख न पैहों ।
मन समेत या तनुके बासिन्ह,
इहै सिखावन दैहों ॥ २ ॥
स्रवननि और कथा नहिं सुनिहौं,
रसना और न गैहों ।

रोकिहौं नैन बिलोकत औरहिं
सीस ईस ही नैहों ॥ ३ ॥
नातो नेह नाथसों करि सब
नातो नेह बहैहों ।
यह छर भार ताहि तुलसी जग
जाको दास कहैहों ॥ ४ ॥

वैराग्य

(६२)

जो मोहि राम लागते मीठे ।
तौ नवरस, षटरस-रस अनरस
ह्वै जाते सब सीठे ॥ १ ॥
बंचक बिषय बिबिध तनु धरि
अनुभवे, सुने अरु डीठे ।
यह जानत हौं हृदय आपने
सपने न अघाइ उबीठे ॥ २ ॥

तुलसिदास प्रभु सों एकहि बल
बचन कहत अति ढीठे।
नामकी लाज राम करुनाकर
केहि न दिये कर चीठे॥ ३॥

वेदान्त

(६३)

अस कछु समुझि परत रघुराया।
बिनु तुव कृपा दयालु दास हित,
मोह न छूटै माया॥ १॥
बाक्य-ग्यान अत्यन्त-निपुन भव-
पार न पावै कोई।
निसि गृह मध्य दीपकी बातन्ह,
तम निवृत्त नहिं होई॥ २॥
जैसे कोइ इक दीन दुखित अति,
असन-हीन दुख पावै।

३

चित्र कल्पतरु कामधेनु गृह,
लिखे न बिपति नसावै ॥ ३ ॥
षटरस बहु प्रकार भोजन कोउ,
दिन अरु रैनि बखानै ।
बिनु बोले संतोष-जनित सुख,
खाइ सोइ पै जानै ॥ ४ ॥
जब लगि नहिं निज हृदि प्रकास अरु,
बिषय-आस मन माहीं ।
तुलसिदास तब लगि जग-जोनि
भ्रमत, सपनेहुँ सुख नाहीं ॥ ५ ॥

लीला

(६५)

जागिये रघुनाथ कुँवर पंछी बन बोले ॥
चंद-किरन सीतल भई चकई पिय मिलन गई ।
त्रिबिध मंद चलत पवन पल्लव द्रुम डोले ॥

प्रात भानु प्रगट भयो रजनीको तिमिर गयो ।
भृंग करत गुंजगान कमलन दल खोले ॥
ब्रह्मादिक धरत ध्यान, सुर-नर-मुनि करत गान ।
जागनकी बेर भई नयन पलक खोले ॥
तुलसिदास अति अनंद, निरखिके मुखारबिंद ।
दीननको देत दान भूषन बहु मोले ॥

(६५) राग बिभास

जागिये कृपानिधान जानराय रामचन्द्र !
जननी कहै बार बार, भोर भयो प्यारे ।
राजिवलोचन बिसाल, प्रीति-बापिका मराल ,
ललित कमल-बदन ऊपर मदन कोटि वारे ॥
अरुन उदित, बिगत सर्बरी, ससांक-किरन हीन ,
दीन दीप-जोति, मलिन-दुति समूह तारे ।
मनहुँ ग्यान घन प्रकास बीते सब भव-बिलास ,
आस त्रास-तिमिर-तोष-तरनि-तेज जारे ॥

बोलत खग निकर मुखर, मधुर, करि प्रतीत ,
सुनहु स्रवन, प्रान जीवन धन, मेरे तुम बारे ।
मनहुँ बेद बंदी मुनिबृंद सूत मागधादि बिरुद–
बदत 'जय जय जय जयति कैटभारे' ॥
बिकसित कमलावली, चले प्रपुंज चंचरीक ,
गुंजत कल कोमल धुनि त्यागि कंज न्यारे ।
जनु बिराग पाइ सकल-सोक-कूप-गृह बिहाइ ,
भृत्य प्रेममत्त फिरत गुनत गुन तिहारे ॥
सुनत बचन प्रिय रसाल जागे अतिशय दयाल ,
भागे जंजाल बिपुल, दुख-कदंब दारे ।
तुलसिदास अति अनंद, देखिकै मुखारबिंद ,
छूटे भ्रमफंद परम मंद द्वंद भारे ॥

(६६) राग बिलावल

झूलत राम पालने सोहैं ।
भूरि-भाग जननी जन जोहैं ॥

तन मृदु मंजुल मेचकताई ।
झलकति बाल बिभूषन-झाँई ॥
अधर पानि पद लोहित लोने ।
सर-सिँगार-भव-सारस सोने ॥
किलकत निरखि बिलोल खेलौना ।
मनहुँ बिनोद लरत छबि छौना ॥
रंजित अंजन कंज बिलोचन ।
भ्राजत भाल तिलक गोरोचन ॥
लस मसिबिंदु बदनबिधु नीको ।
चितवत चितचकोर तुलसीको ॥

(६७) राग सूहो

राम-पद-पदुम-पराग परी ।
ऋषि-तिय तुरत त्यागि पाहन-तनु
छबिमय देह धरी ॥ १ ॥
प्रबल पाप पति-साप-दुसह-दव
दारुन जरनि जरी ।

कृपा-सुधा सिँचि बिबुध बेलि ज्यों
फिरि सुख-फरनि फरी ॥ २ ॥
निगम-अगम मूरति महेस-
मति-जुबति बराय बरी ।
सोइ मूरति भइ जानि नयन-पथ
इकटक तें न टरी ॥ ३ ॥
बरनति हृदय सरूप सील गुन
प्रेम-प्रमोद भरी ।
तुलसिदास अस केहि आरतकी
आरति प्रभु न हरी ? ॥ ४ ॥

(६८) राग केदारा

सखि नीकेकै निरखि कोऊ सुठि सुंदर बटोही ।
मधुर मूरति मदनमोहन जोहन-जोग,
बदन सोभासदन देखिहौं मोही ॥ १ ॥
साँवरे गोरे किसोर, सुर-मुनि-चित्त-चोर,
उभय-अंतर एक नारि सोही ।

मनहुँ बारिद-बिधु बीच ललित अति,
राजति तड़ित निज सहज बिछोही ॥ २ ॥
उर धीरजहि धरि, जन्म सफल करि,
सुनहु सुमुखि ! जनि बिकल होही ।
को जानै कौने सुकृत लह्यो है लोचन-लाहु,
ताहि तें बारहि बार कहति तोही ॥ ३ ॥
सखिहि सुसिख दई, प्रेम-मगन भई,
सुरति बिसरि गई आपनी ओही ।
तुलसी रही है ठाढ़ी पाहन गढ़ी-सी काढ़ी,
कौन जाने कहाँतें आई कौनकी को ही ॥४॥

(६९) राग केदारा

मनोहरताको मानो ऐन ।
स्यामल गौर किसोर पथिक दोउ,
सुमुखि ! निरखु भरि नैन ॥ १ ॥
बीच बधू बिधुबदनि बिराजति
उपमा कहुँ कोउ है न ।

मानहुँ रति ऋतुनाथ सहित
मुनि-बेष बनाए है मैन ॥ २ ॥
किधौं सिँगार-सुखमा-सुप्रेम मिलि
चले जग-जित-बित लैन ।
अद्भुत त्रयी किधौं पठई है बिधि
मग-लोगन्हि सुख दैन ॥ ३ ॥
सुनि सुचि सरल सनेह सुहावने
ग्राम बधुन्हके बैन ।
तुलसी प्रभु तरुतर बिलँवे
किए प्रेम कनौडे कै न ? ॥ ४ ॥

(७०) राग केदारा

बहुत दिन बीते सुधि कछु न लही ।
गए जो पथिक गोरे साँवरे सलोने,
सखि, संग नारि सुकुमारि रही ॥ १ ॥
जानि पहिचानि बिनु आपु तें आपनेहु तें,
प्रानहुँ तें प्यारे प्रियतम उपही ।

सुधाके सनेहहूके सार लै सँवारे बिधि,

जैसे भावते हैं भाँति जाति न कही ॥ २ ॥

बहुरि बिलोकिबे कबहुँक, कहत

तनु पुलक, नयन जलधार बही ।

तुलसी प्रभु सुमिरि ग्रामजुबती सिथिल,

बिनु प्रयास परीं प्रेम सही ॥ ३ ॥

(७१) राग गौरी

भाई ! हौं अवध कहा रहि लैहौं ।

राम-लषन-सिय-चरन बिलोकन

कालिह काननहिं जैहौं ॥ १ ॥

जद्यपि मोतें, कै कुमातु तें,

ह्वै आई अति पोची ।

सनमुख गए सरन राखहिंगे

रघुपति परम सँकोची ॥ २ ॥

तुलसी यों कहि चले भोरहीं,

लोग बिकल सँग लागे ।

जनु बन जरत देखि दारुन दव

निकसि बिहँग मृग भागे ॥ ३ ॥

(७२) राग केदारा

रघुपति ! मोहिं संग किन लीजै ?

बार बार 'पुर जाहु' नाथ !

केहि कारन आयसु दीजै ॥ १ ॥

जद्यपि हौं अति अधम कुटिल मति

अपराधिनको जायो ।

प्रनतपाल कोमल-सुभाव जिय

जानि सरन तकि आयो ॥ २ ॥

जो मेरे तजि चरन आन गति,

कहौं हृदय कछु राखी-

तौ परिहरहु दयालु दीनहित

प्रभु अभिअन्तर-साखी ॥ ३ ॥

ताते नाथ ! कहौं मैं पुनि पुनि

प्रभु पितु मातु गुसाईं ।

भजन-हीन नरदेह बृथा खर
स्वान फेरुकी नाईं ॥ ४ ॥
बन्धु-बचन सुनि स्रवन नयन
राजीव नीर भरि आए।
तुलसिदास प्रभु परम कृपा गहि—
बाँह भरत उर लाए ॥ ५ ॥

(७३) राग केदारा

बिनती भरत करत कर जोरे।
दीनबन्धु दीनता दीनकी
कबहुँ परै जनि भोरे ॥ १ ॥
तुम्हसे तुम्हहिं नाथ मोको,
मोसे जन तुम्हहि बहुतेरे।
इहैं जानि पहिचानि प्रीति
छमिये अघ औगुन मेरे ॥ २ ॥
यों कहि सीय-राम-पाँयन परि
लषन लाइ उर लीन्हें।

पुलक सरीर नीर भरि लोचन
कहत प्रेम-पन कीन्हें ॥ ३ ॥
तुलसी बीते अवधि प्रथम दिन
जो रघुबीर न ऐहो ।
तो प्रभु-चरन-सरोज-सपथ
जीवत परिजनहि न पैहो ॥ ४ ॥

(७४) राग कल्याण

कर सर धनु, कटि रुचिर निषंग ।
प्रिया-प्रीति-प्रेरित बन बीथिन्ह
बिचरत कपट-कनक-मृग-संग ॥
भुज बिसाल कमनीय कंध उर,
स्रम-सीकर सोहैं साँवरे अंग ।
मनु मुकुता मनि-मरकतगिरिपर
लसत ललित रबि-किरनि प्रसंग ॥
नलिन-नयन, सिर जटा-मुकुट-बिच
सुमन-माल मनु सिव-सिर गंग ।

तुलसिदास ऐसी मूरतिकी बलि,
छबि बिलोकि लाजैं अमित अनंग ॥

(७५) राग सोरठ

राघौ गीध गोद करि लीन्हों ।
नयन-सरोज सनेह-सलिल सुचि
मनहुँ अरघ जल दीन्हों ॥ १ ॥
सुनहु लषन ! खगपतिहि मिले बन
मैं पितु-मरन न जान्यौ ।
सहि न सक्यौ सो कठिन बिधाता
बड़ो पछु आजुहि भान्यौ ॥ २ ॥
बहुबिधि राम कह्यौ तनु राखन
परम धीर नहिं डोल्यौ ।
रोकि प्रेम, अवलोकि बदन-बिधु
बचन मनोहर बोल्यौ ॥ ३ ॥
तुलसी प्रभु झूठे जीवन-लगि
समय न धोखो लैहौं ।

जाको नाम मरत मुनि-दुर्लभ
तुमहि कहाँ पुनि पैहौं ॥ ४ ॥

(७९) राग केदारा

पद-पद्म गरीबनिवाजके ।
देखिहौं जाइ पाइ लोचन-फल
हित सुर साधु समाजके ॥ १ ॥
गई-बहोर, ओर-निरबाहक,
साजक बिगरे साजके ।
सबरी-सुखद, गीध-गतिदायक,
समन सोक कपिराजके ॥ २ ॥
नाहिंन मोहिं और कतहूँ कछु
जैसे काग जहाजके ।
आयो सरन सुखद पद-पंकज
चोंथे रावन-बाजके ॥ ३ ॥
आरति-हरन सरन समरथ सब
दिन अपनेकी लाजके ।

तुलसी पाहि कहत नत-पालक
मोहुँसे निपट निकाजके ॥ ४ ॥

(७७) राग केदारा

दीन-हित बिरद पुराननि गायो ।
आरत-बन्धु, कृपालु, मृदुलचित
जानि सरन हौं आयो ॥ १ ॥
तुम्हरे रिपुको अनुज बिभीषन
बंस निसाचर जायो ।
सुनि गुन सील सुभाउ नाथको
मैं चरननि चितु लायो ॥ २ ॥
जानत प्रभु दुख सुख दासनिको
तातें कहि न सुनायो ।
करि करुना भरि नयन बिलोकहु
तब जानौं अपनायो ॥ ३ ॥
बचन बिनीत सुनत रघुनायक
हँसि करि निकट बुलायो ।

भेंट्यो हरि भरि अंक भरत ज्यौं
लंकापति मन भायो ॥ ४ ॥
कर पंकज सिर परसि अभय कियो,
जन पर हेतु दिखायो।
तुलसिदास रघुबीर भजन करि
को न परमपद पायो? ॥ ५ ॥

(७८) राग धनाश्री

सत्य कहौं मेरो सहज सुभाउ।
सुनहु सखा कपिपति लंकापति
तुम्हसन कौन दुराउ।
सब बिधि हीन दीन अति जड़मति
जाको कतहुँ न ठाँउ ॥ १ ॥
आये सरन भजौं, न तजौं तिहि,
यह जानत ऋषिराउ।
जिन्हके हौं हित सब प्रकार चित
नाहिन और उपाउ ॥ २ ॥

पुनि-पुनि भुजा उठाइ कहत हों
सकल सभा पतिआउ ।
नहिं कोऊ प्रिय मोहिं दास सम
कपट प्रीति बहि जाउ ॥ ३ ॥
सुनु रघुपतिके बचन बिभीषन
प्रेम-मगन मन चाउ ।
तुलसिदास तजि आस-त्रास सब
ऐसे प्रभु कहँ गाउ ॥ ४ ॥

(७९) राग जयतश्री

कब देखौंगी नयन वह मधुर मूरति ?
राजिवदल-नयन, कोमल-कृपा-अयन,
मयननि बहु छबि अंगनि दूरति ॥ १ ॥
सिरसि जटाकलाप पानि सायक चाप
उरसि रुचिर बनमाल लूरति ।
तुलसिदास रघुबीरकी सोभा सुमिरि,
भई है मगन नहि तनकी सूरति ॥ २ ॥

(८०) राग सोरठ

बैठी सगुन मनावति माता ।
कब ऐहैं मेरे बाल कुशल घर
कहहु काग फुर बाता ॥ १ ॥
दूध भातकी दोनी दैहौं
सोने चौंच मढ़ैहौं ।
जब सियसहित बिलोकि नयन भरि
राम-लषन उर लैहौं ॥ २ ॥
अवधि समीप जानि जननी जिय
अति आतुर अकुलानी ।
गनक बोलाइ पाँय परि पूछति
प्रेम-मगन मृदु बानी ॥ ३ ॥
तेहि अवसर कोउ भरत निकट तें
समाचार लै आयो ।
प्रभु आगमन सुनत तुलसी मनो
मीन मरत जल पायो ॥ ४ ॥

(८१)

जानत प्रीति-रीति रघुराई ।
नाते सब हाते करि राखत,
राम सनेह-सगाई ॥ १ ॥
नेह निबाहि देह तजि दसरथ,
कीरति अचल चलाई ।
ऐसेहु पितु तें अधिक गीधपर
ममता गुन गरुआई ॥ २ ॥
तिय-बिरही सुग्रीव सखा लखि
प्रानप्रिया बिसराई ।
रन परयो बंधु बिभीषन ही को,
सोच हृदय अधिकाई ॥ ३ ॥
घर, गुरुगृह, प्रिय-सदन, सासुरे,
भइ जब जहँ पहुनाई ।

तब तहँ कहि सबरीके फलनिकी
रुचि माधुरी न पाई ॥ ४ ॥
सहज सरूप कथा मुनि बरनत
रहत सकुच सिर नाई ।
केवट मीत कहे सुख मानत
बानर बंधु बड़ाई ॥ ५ ॥
प्रेम-कनौड़ो रामसो प्रभु
त्रिभुवन तिहुँ काल न भाई ।
'तेरो रिनी' कह्यौ हौं कपिसों
ऐसी मानहि को सेवकाई ॥ ६ ॥
तुलसी राम-सनेह-सील लखि,
जो न भगति उर आई ।
तौ तोहिं जनमि जाय जननी जड़
तनु-तरुनता गवाँई ॥ ७ ॥

रूप

(८२) राग कल्याण

रघुपति राजीवनयन, शोभातनु कोटिमयन,
करुनारस-अयन चयन-रूप भूप, माई ।
देखो सखि अतुल छबि, संत कंज-कानन-रबि,
गावत कल कीरति कवि-कोविद समुदाई ॥
मज्जन करि सरजु-तीर, ठाढ़े रघुबंस-बीर,
सेवत पद-कमल धीर निरमल चित लाई ।
ब्रह्ममंडली-मुनींद्रबृंद-मध्य इंदु-बदन—
राजत सुखसदन लोक-लोचन-सुखदाई ॥
बिथुरित सिररुह बरूथ कुंचितबिच सुमन-जूथ,
मनि जुत सिसु-फनि-अनीक ससि-समीप आई ।
जनु सभीत दै अँकोर राखे जुग रुचिर मोर,
कुंडल-छबि निरखि चोर सकुचत अधिकाई ॥
ललित भ्रकुटि तिलक भाल चिबुक अधर द्विज—
रसाल, हास चारुतर, कपोल नासिका सुहाई ।

मधुकर जुग पंकज बिच सुक बिलोकि नीरज पै-
लरत मधुप-अवलि मानो बीच कियो जाई ॥
सुंदर पट पीत बिसद, भ्राजत बनमाल उरसि,
तुलसिका प्रसून रचित बिबिध बिधि बनाई।
तरु-तमाल अधबिच जनु त्रिबिध कीर पाँति
रुचिर, हेमजाल अंतर परि तातें न उड़ाई ॥
संकर-हृदि-पुंडरीक निसि बस हरि-चंचरीक,
निर्व्यलीक मानस-गृह संतत रहे छाई।
अतिसय आनन्दमूल तुलसिदास सानुकूल,
हरन सकल सूल, अवध-मंडन रघुराई ॥

(८३) राग केदारा

सखि ! रघुनाथ रूप निहारु ।
सरद-बिधु रबि-सुवन मनसिज-मान-भंजनिहारु ॥
स्याम सुभग शरीर जनु मन-काम पूरनिहारु ।
चारु चंदन मनहुँ मरकत सिखर लसत निहारु ॥

रुचिर उर उपवीत राजत, पदिक गजमनिहारु ।
मनहुँ सुरधनु नखत गनबिच तिमिर-भंजनिहारु ॥
विमल पीत दुकूल दामिन-दुति-विनिंदनिहारु ।
बदन सुखमा-सदन सोभित मदन-मोहनिहारु ॥
सकल अंग अनूप नहि कोउ सुकवि बरननिहारु ।
दास तुलसी निरखतहि सुख लहत निरखनिहारु ॥

कृष्ण-लीला

(८४) राग आसावरी

मोकहँ झूठेहु दोष लगावहिं ।
मैया ! इन्हहिं बानि परगृहकी,
नाना जुगुति बनावहिं ॥ १ ॥
इन्हके लिये खेलिबो छाँड़यौं
तऊ न उबरन पावहिं ।
भाजन फोरि, बोरि कर गोरस
देन उरहनो आवहिं ॥ २ ॥

कबहुँक बाल रोवाइ पानि गहि

मिस करि उठि उठि धावहिं ।

करहिं आपु सिर धरहिं आनके

बचन बिरंच हरावहिं ॥ ३ ॥

मेरी टेव बूझि हलधरको,

संतत संग खेलावहिं ।

जे अन्याउ करहिं काहूको

ते सिसु मोहि न भावहिं ॥ ४ ॥

सुनि सुनि बचन-चातुरी ग्वालिनि

हँसि हँसि बदन दुरावहिं ।

बालगोपाल-केलि-कल-कीरति

तुलसिदास मुनि गावहिं ॥ ५ ॥

(८५) राग केदारा

गोकुल प्रीति नित नई जानि ।

जाइ अनत सुनाइ मधुकर ग्यानगिरा पुरानि ॥

मिलहिं जोगी जरठ तिन्हहिं दिखाउ निरगुनखानि ।

नवल नंदकुमारके ब्रज सगुन सुजस बखानि ॥
तू जो हम आदरथो सो तो नवकमलकी कानि ।
तजहि तुलसी समुझि यह उपदेसिबेकी बानि ॥

(८६) राग केदारा

हरिको ललित बदन निहारु ।
निपटही डाँटति निठुर ज्यों लकुट करतें डारु ॥
मंजु अंजनसहित जल-कन चुवत लोचन चारु ।
स्याम सारस मग मनो ससि स्रवत सुधा-सिंगारु ॥
सुभग उर, दधि-बुंद सुंदर लखि अपनपौ वारु ।
मनहुँ मरकत मृदु सिखरपर लसत बिसद तुषारु ॥
कान्हहूँ पर सतर भौंहैं, महरि मनहिं बिचारु ।
दास तुलसी रहति क्यों रिस निरखि नंद-कुमारु ॥

(८७) राग गौरी

टेरि कान्ह गोवर्धन चढ़ि गैया ।

मथि मथि पियो बारि चारिकमें
भूख न जाति अघाति न घैया ॥ १ ॥
सैल-सिखर चढ़ि चितै चकित चित,
अति हित बचन कह्यो बल भैया ।
बाँधि लकुट पट फेरि बोलाई,
सुनि कल बेनु धेनु धुकि धैया ॥ २ ॥
बलदाऊ देखियत दूरिते
आवति छाक पठाई मेरी मैया ।
किलकि सखा सब नचत मोर ज्यों
कूदत कपि कुरंगकी नैया ॥ ३ ॥
खेलत खात परस्पर डहकत
छीनत कहत करत रोगदैया ।
तुलसी बालकेलि-सुख निरखत,
बरसत सुमन सहित सुरसैया ॥ ४ ॥

(८८) राग गौरी

गोपाल गोकुल-वल्लभी-प्रिय, गोप-गोसुत-वल्लभं ।
चरणारविन्दमहं भजे भजनीय सुर-मुनि-दुर्लभं ॥
घनश्याम काम अनेक छवि लोकाभिराम मनोहरं ।
किञ्जल्क-बसन किशोर मूरति, भूरि गुन करुणाकरं
शिर केकिपच्छ, बिलोल कुण्डल अरुण बनरुह-लोचनं
गुञ्जावतंश विचित्र सब अँग धातु भव-भय-मोचनं ॥
कच कुटिल सुन्दर तिलक भ्रू, राका-मयंक-समाननं
अपहरण-तुलसीदास-त्रास, बिहार वृन्दा-काननं ॥

श्रीसूरदासजी

नाम

(८९) राग भैरवी

रे मन, कृष्णनाम कहि लीजै ।
गुरुके बचन अटल करि मानहि, साधु-समागम कीजै
पढ़िये गुनिये भगति भागवत, और कहा कथि कीजै।
कृष्णनाम बिनु जनमु बादिहो, बिरथा काहे जीजै ॥
कृष्णनाम-रस बह्यो जात है, तृषावन्त ह्वै पीजै ।
सूरदास हरिसरन ताकिये, जनम सफल करि लीजै॥

(९०) राग धनाश्री

है हरि-नामको आधार ।
और या कलिकाल नाहिंन, रह्यो बिधि-ब्योहार ॥
नारदादि सुकादि संकर, कियो यहै बिचार ।
सकल स्रुति-दधि-मथत पायो, इतो यह घृतसार ॥

दसहु दिसि गुन करम रोक्यो, मीनको ज्यों जार ।
सूर हरिके भजन-बलतें मिटि गयो भव-भार ॥

(९१) राग आसावरी

ताते तुमरो भरोसो आवै ।
दीनानाथ पतितपावन जस, बेद उपनिषद गावै ॥
जो तुम कहौ कौन खल तारयो तौ हौं बोलौं साखी ।
पुत्रहेतु हरिलोक गयो द्विज सक्यो न कोऊ राखी ॥
गनिका किये कौन व्रत संजम, सुक-हितनाम पढ़ायौ ।
मनसाकरि सुमिरयो गज बपुरो, ग्राह परमगति पायौ ॥

(९२) राग सारंग

जो तू रामनाम चित धरतौ ।
अबको जन्म आगिलो तेरो दोऊ जन्म सुधरतौ ॥
जमको त्रास सबै मिटिजातो, भक्त नाम तेरो परतौ ।
तंदुल घिरत सँवारि स्यामको संत परोसो करतौ ॥

होतो नफा साधुकी संगति मूल गाँठते टरतौ ।
सूरदास बैकुंठ पैठमें कोऊ न फैंट पकरतो ॥

(९३) राग सारंग

जो सुख होत गोपालहिं गाये ।
सो नहिं होत किये जपतपके कोटिक तीरथ न्हाये ॥
दिये लेत नहिं चारिपदारथ, चरन-कमल चित लाये ।
तीनि लोक तृन सम करि लेखत, नँदनंदन उर आये ॥
बंसीबट बृंदाबन जमुना, तजि बैकुंठ को जाये ।
सूरदास हरिको सुमिरन करि, बहुरि न भव चलि आये

(९४) राग बिहागरो

जो पै राम-नाम धन धरतो ।
टरतौ नहीं जनमजनमान्तर कहा राज जम करतो ॥
लेतो करि ब्योहार सबनिसों मूल गाँठमें परतो ।
भजन प्रताप सदाई घृत मधु, पावक परे न जरतो ॥
सुमिरन गोन बेद बिधि बैठो बिप्र-परोहन भरतो ।
सूर चलत बैकुंठ पेलिकै बीच कौन जो अरतो ॥

(९५) राग कान्हरो

तुम्हरी कृपा गोबिंद गुसाँई
हौं अपने अज्ञान न जानत ।
उपजत दोष नयन नहिं सूझत
रबिकी किरन उलूक न मानत ॥
सब सुख निधि हरिनाम महा मनि
सो पायो नाहिन पहिचानत ।
परम कुबुद्धि तुच्छ रस लोभी
कौड़ी लगि सठ मग-रज छानत ॥
सिवको धन संतनको सरबसु,
महिमा बेद पुरान बखानत ।
इते मान यह सूर महासठ
हरि-नग बदलि महा-खल आनत ॥

विनय

(९६) राग बागेश्री

जो हम भले-बुरे तो तेरे ।
तुम्हैं हमारी लाज बड़ाई,
बिनती सुनु प्रभु मेरे ॥

सब तजि तुव सरनागत आयो,
निज कर चरन गहे रे ।
तुव प्रताप-बल बदत न काहू,
निडर भये घर चेरे ॥
और देव सब रंक भिखारी,
त्यागे बहुत अनेरे ।
सूरदास प्रभु तुम्हरि कृपातें
पाये सुख जु घनेरे ॥

(९७) राग आसावरी

करी गोपालकी सब होइ ।
जो अपनो पुरुषारथ मानत,
अति झूठो है सोइ ॥
साधन मंत्र यंत्र उद्यम बल,
यह सब डारहु धोइ ।
जो कछु लिखि राखी नँदनंदन,
मेटि सकै नहिं कोइ ॥

दुख-सुख लाभ-अलाभ समुझि तुम,
कतहिं मरत हौ रोइ ।
सूरदास स्वामी करुनामय,
स्याम-चरन मन पोइ ॥

(९८)

हरि हौं बड़ी बेरको ठाढ़ो ।
जैसे और पतित तुम तारे,
तिनहिंन महँ लिखि काढ़ो ॥ १ ॥
जुग-जुग बिरद यही चलि आयो,
टेर कहत हौं ताते ।
मरियत लाज पंच पतितनमें,
हौं धर कहो कहाँते ॥ २ ॥
कै अब हार मानिकर बैठो,
कै करु बिरद सही ।
सूर पतित जो झूठ कहत है,
देखो खोलि बही ॥ ३ ॥

(९९) राग कान्हरो

दीनानाथ अब बार तुम्हारी ।

पतित उधारन बिरद जानिकै,

बिगरी लेहु सँभारी ॥ १ ॥

बालापन खेलत ही खोयो,

जुवा बिषयरस माते ।

बृद्ध भयो सुधि प्रगटी मोको,

दुखित पुकारत ताते ॥ २ ॥

सुतनि तज्यो,तिय तज्यो,भ्रात तजि,

तनु त्वच भई जु न्यारी ।

स्रवन न सुनत चरनगति थाकी,

नैन भये जल धारी ॥ ३ ॥

पलित केस कफ-कंठ बिरोध्यो,

कल न परी दिन राती ।

माया मोह न छाँड़ै तृस्ना,

ए दोऊ दुखदाती ॥ ४ ॥

अब या व्यथा दूरि करिबैको,
और न समरथ कोई ।
सूरदास प्रभु करुनासागर,
तुमते होइ सु होई ॥ ९ ॥

(१००) राग सारंग

नाथ मोहिं अबकी बेर उबारो ।
तुम नाथनके नाथ सुवामी,
दाता नाम तिहारो ।
करमहीन जनमको अन्धो,
मोतें कौन नकारो ॥ १ ॥
तीन लोकके तुम प्रतिपालक,
मैं हूँ दास तिहारो ।
तारी जाति कुजाति स्याम तुम,
मोपर किरपा धारो ॥ २ ॥
पतितनमें इक नायक कहिये,
नीचनमें सरदारो ।

कोटि पाप इक पासँग मेरे,
अजामिल कौन बिचारो ॥ ३ ॥
नाठो धरम नाम सुनि मेरो,
नरक दियो हठि तारो ।
मोको ठौर नहीं अब कोऊ,
अपनो बिरद सम्हारो ॥ ४ ॥
छुद्र पतित तुम तारे रमापति,
अब न करो जिय गारो ।
सूरदास साचो तब माने,
जो ह्वै मम निस्तारो ॥ ५ ॥

(१०१) राग काफी

अबकी टेक हमारी ।
लाज राखो गिरधारी ॥
जैसी लाज रखी पारथकी, भारत जुद्ध मँझारी ।
सारथि होके रथको हाँक्यौ, चक्रसुदर्सन-धारी ॥
भगतकी टेक न टारी ॥ अबकी० ॥ १ ॥

जैसी लाज रखी द्रौपदिकी, होन न दीन्हि उघारी।
खैंचत खैंचत दोउ भुज थाके, दुस्सासन पचि हारी॥
चीर बढ़ायो मुरारी॥ अबकी०॥ २॥
सूरदासकी लज्जा राखो, अब को है रखवारी।
राधे राधे श्रीवर-प्यारी, श्रीबृषभानु-दुलारी॥
सरन तकि आयो तुम्हारी॥ अबकी०॥ ३॥

(१०२) राग आसावरी

दीनन दुखहरन देव, सन्तन सुखकारी॥
अजामील गीध ब्याध, इनमें कहो कौन साध,
पंछीहू पद पढ़ात, गनिका-सी तारी॥
ध्रुवके सिर छत्र देत, प्रह्लादकहँ उबार लेत,
भगत हेत बाँध्यो सेत, लंकपुरी जारी॥
तंदुल देत रीझ जात, सागपातसों अघात,
गिनत नहीं जूँठे फल, खाटे-मीठे-खारी॥
गजको जब ग्राह ग्रस्यो, दुस्सासन चीर खस्यो,
सभा बीच कृष्ण कृष्ण, द्रौपदी पुकारी॥

इतनेमें हरि आइ गये, बसनन आरूढ भये,
सूरदास द्वारे ठाढ़ो, आँधरो भिखारी ॥

(१०३)

तुम तजि और कौन पै जाऊँ।
काके द्वार जाइ सिर नाऊँ,
परहथ कहाँ बिकाऊँ ॥ १ ॥
ऐसो को दाता है समरथ,
जाके दिये अघाऊँ।
अंतकाल तुमरो सुमिरन गति,
अनत कहूँ नहिं पाऊँ ॥ २ ॥
रंक अयाची कियो सुदामा,
दियो अभयपद ठाऊँ।
कामधेनु चिंतामनि दीनो,
कलप-बृच्छ तर छाऊँ ॥ ३ ॥
भवसमुद्र अति देखि भयानक,
मनमें अधिक डराऊँ।

कीजै कृपा सुमिरि अपनो पन,
सूरदास बलि जाऊँ ॥ ४ ॥

(१०४)

अब कैसे दूजे हाथ बिकाऊँ ।
मन-मधुकर कीनों वा दिनतें,
चरन-कमल निज ठाऊँ ॥ १ ॥
जो जानों और कोउ कर्ता,
तऊ न मन पछिताऊँ ।
जो जाको सोई सो जानै,
अघतारन नर नाऊँ ॥ २ ॥
या परतीति होय या जुगकी,
परमित छुटत डराऊँ ।
सूरदास प्रभु सिंधु-सरन तजि,
नदी-सरन कत जाऊँ ॥ ३ ॥

(१०५) राग आसावरी

अबकी राखि लेहु भगवान ।
हम अनाथ बैठे द्रुम-डरियाँ,
पारधि साध्यो बान ॥ १ ॥
ताके डर निकसन चाहत हैं,
ऊपर रह्यौ सचान ।
दुहूँ भाँति दुख भयो कृपानिधि,
कौन उबारै प्रान ॥ २ ॥
सुमिरत ही अहि डस्यो पारधी,
लाग्यौ तीर सचान ।
सूरदास गुन कहँ लग बरनौं,
जै जै कृपानिधान ॥ ३ ॥

(१०६) राग सारंग

अपनी भगति दे भगवान ।
कोटि लालच जो दिखावहु नाहिनै रुचि आन ॥

जरत ज्वाला, गिरत गिरिते, स्वकर काटत सीस ।
देखि साहस सकुच मानत राखि सकत न ईस ॥
कामना करि कोपि कबहूँ करत कर पसु घात ।
सिंह सावक जात गृह तजि, इन्द्र अधिक डरात ॥
जा दिनातें जनमु पायों यहै मेरी रीति ।
बिषय बिष हठि खात नाहीं डरत करत अनीति ॥
थके किंकर जूथ जमके टारे टरत न नेक ।
नरक-कूपनि जाइ जमपुर पर्यो बार अनेक ॥
महा माचल मारिबेको सकुच नाहिन मोहिं ।
पर्यो हौं पन किये द्वारे लाज पनकी तोहिं ॥
नाहिनै काँचो कृपानिधि करौ कहा रिसाइ ।
सूर तबहुँ न द्वार छाँड़ै डारिहौ कढ़राइ ॥

(१०७) राग धनाश्री

अपनेको को न आदर देय ।
ज्यों बालक अपराध कोटि करै मात न मारै तेय ॥

ते बेली कैसें दहियतु है जो अपने रस भेय ।
श्रीसंकर बहु रतन त्यागिकें बिषहिं कंठ लपटेय ॥
माता अछत छीर बिनु सुत मरै अजाकंठ कुच सेय ।
जद्यपि सूर महापतित है पतितपावन तुम तेय ॥

(१०८) राग बिलावल

अबके माधव मोहि उधारि ।
मगन हौं भव-अंबु-निधिमें कृपा-सिंधु मुरारि ॥
नीर अति गंभीर माया, लोभ लहरि तरंग ।
लिये जात अगाध जलमें गहे ग्राह अनंग ॥
मीन इंद्रिय अतिहि काटत मोट अघ सिर भार ।
पग न इत उत धरन पावत उरझि मोह सेवार ॥
काम क्रोध समेत तृस्ना पवन अति झकझोर ।
नाहिं चितवन देत तिय सुत नाम-नौका ओर ॥
थक्यो बीच बेहाल बिहबल सुनहु करुनामूल ।
स्याम भुज गहि काढ़ि डारहु सूर ब्रजके कूल ॥

(१०९) राग धनाश्री

अब मोहि भीजत क्यों न उबारो ।

दीनबंधु करुनामय स्वामी

जनके दुःख निवारो ॥

ममता घटा, मोहकी बूँदें,

सरिता मैन अपारो ।

बूड़त कतहुँ थाह नहिं पावत

गुरुजन ओट अधारो ॥

गरजन क्रोध, लोभको नारो

सूझत कहुँ न उधारो ।

तृसना तड़ित चमकि छिन ही छिन

अहिनिसि यह तन जारो ॥

यह सब जल कलिमलहि गहे है

बोरत सहस प्रकारो ।

सूरदास पतितनको संगी

बिरदहि नाथ सम्हारो ॥

(११०) राग कान्हरो

ऐसो कब करिहो गोपाल ।

मनसा नाथ मनोरथ दाता
हौ प्रभु दीनदयाल ॥
चित्त निरंतर चरनन अनुरत
रसना चरित रसाल ।
लोचन सजल प्रेम पुलकित तन
कर-कंजनि-दल-माल ॥
ऐसे रहत, लिखै छिनु-छिनु जम
अपनौ भायो जाल ।
सूर सुजस रागी न डरत मन
सुनि जातना कराल ॥

(१११) राग धनाश्री

ऐसे प्रभु अनाथके स्वामी ।

कहियत दीन दास पर-पीरक
सब घट अन्तरजामी ॥

करत बिबस्त्र द्रुपद-तनयाको
'सरन' सब्द कहि आयो ।
पूर्ण अनंत कोटि परिबसननि
अरिको गरब गँवायो ॥
सुत हित बिप्र, कीर हित गनिका,
परमारथ प्रभु पायो ।
छन चिंतवन साप संकट ते
गज ग्राह ते छुटायो ॥
तब तव पद न देखि अबिगतको
जन लगि बेष बनायो ।
जे जन दुखी जानि भए ते रिपु
हति हति सुख उपजायो ॥
तुम्हरि कृपा जदुनाथ गुसाईं
किहि न आसु सुख पायो ।
सूरदास अंध अपराधी
सो काहे बिसरायो ॥

(११२) राग सारंग

कौन गति करिहौ मेरी नाथ ।
हौं तो कुटिल कुचाल कुदरसन
रहत बिषयके साथ ॥
दिन बीतत मायाके लालच
कुल कुटुंबके हेत ।
सारी रैन नींदभरि सोवत
जैसे पसू अचेत ॥
कागज धरनि करै द्रुम लेखनि
जल सायर मसि घोर ।
लिखैं गनेस जनमभरि ममकृत
तऊ दोष नहि ओर ॥
गज गनिका अरु बिप्र अजामिल
अगनित अधम उधारे ।
अपथै चलि अपराध करे मैं
तिनहूँ ते अति भारे ॥

लिखि लिखि मम अपराध जनमके
चित्रगुप्त अकुलायो ।
भृगुऋषि आदि सुनत चकित भये
जम सुनि सीस डुलायो ॥
परम पुनीत पवित्र कृपानिधि
पावन नाम कहायो ।
सूर पतित जब सुन्यो बिरद यह
तब धीरज मन आयो ॥

(११२) राग कल्यान

जैसेहि राखौ तैसेहि रहौं ।
जानत हौ सब दुख सुख जनको मुखकरि कहा कहौं
कबहुँक भोजन देत कृपाकरि कबहुँक भूख सहौं ।
कबहुँक चढ़ौं तुरंग महागज कबहुँक भार बहौं ॥
कमलनयन घनस्याम मनोहर अनुचर भयो रहौं ।
सूरदास प्रभु भगत कृपानिधि तुम्हरे चरन गहौं ॥

(११४) राग धनाश्री

नाथजू अबकै मोहिं उबारो ।
पतितनमें बिख्यात पतित हौं पावन नाम तुम्हारो ॥
बड़े पतित नाहिन पासंगहु अजामेलको जु बिचारो ।
भाजै नरक नाउँ मेरो सुनि जमहु देय हठि तारो ॥
छुद्र पतित तुम तारे श्रीपति अब न करो जिय गारो ।
सूरदास साँचो तब माने जब होय मम निस्तारो ॥

(११५) राग नट

प्रभु मेरे औगुन चित न धरो ।
समदरसी प्रभु नाम तिहारो अपने पनहि करो ॥
इक लोहा पूजामें राखत इक घर बधिक परो ।
यह दुबिधा पारस नहिं जानत कंचन करत खरो ॥
एक नदिया एक नार कहावत मैलो नीर भरो ।
जब मिलिकै दोउ एक बरन भए सुरसरि नाम परो ॥
एक जीव इक ब्रह्म कहावत सूरस्याम झगरो ।
अबकी बेर मोहिं पार उतारो नहिं पन जात टरो ॥

(११६) राग केदारा

बंदौं चरन सरोज तुम्हारे ।

जे पदपदुम सदासिवके धन
सिंधुसुता उरतें नहिं टारे ॥

जे पदपदुम परसि भई पावन
सुरसरि दरस कटत अघ भारे ।

जे पदपदुम परसि ऋषि-पत्नी,
बलि, नृग, ब्याध, पतित बहु तारे ॥

जे पदपदुम रमत बृंदाबन
अहि सिर धरि अगनित रिपु मारे ।

जे पदपदुम परसि ब्रज-भामिनि
सरबसु दै सुत सदन बिसारे ॥

जे पदपदुम रमत पांडव-दल
दूत भये सब काज सँवारे ।

सूरदास तेई पदपंकज
त्रिविध ताप दुख-हरन हमारे ॥

(११७) राग धनाश्री

बिनती जन कासों करै गुसाँई ।
तुम बिनु दीनदयालु, देवतन सब फीकी ठकुराई ॥
अपने-से कर चरन नैन मुख अपनी-सी बुधि बाँई ।
काल करम बस फिरत सकल प्रभु ते हमरी ही नाँई ॥
पराधीन परबदन निहारत मानत मोह बड़ाई ।
हँसे हँसैं, बिलखैं लखि परदुख ज्यों जल दर्पन झाँई ॥
लियो दियो चाहै जो कोऊ सुनि समरथ जदुराई ।
देव सकल व्यापार निरत नित ज्यों पसु दूध चराई ॥
तुम बिनु और न कोउ कृपानिधि पावै पीर पराई ।
सूरदासके त्रास हरनको कृष्ण नाम प्रभुताई ॥

(११८) राग बिहागरो

भजु मन चरन संकटहरन ।
सनक संकर ध्यान लावत निगम असरन सरन ।
सेस सारद कहैं नारद संत चिंतत चरन ॥

पद पराग प्रताप दुरलभ रमाको हितकरन ।
परसि गंगा भई पावन तिहूँ पुर उद्धरन ॥
चित्त चेतत करत, अंतःकरन तारन तरन ।
गए तरि लै नाम केते संत हरि पुर धरन ॥
जासु पदरज परसि गौतम-नारि गति उद्धरन ।
जासु महिमा प्रगट कहत न धोइ पग सिर धरन ॥
कृष्णपद मकरंद पावत और नहिं सिर परन ।
सूर प्रभु चरनारबिंदतें मिटै जन्मरु मरन ॥

(११९) राग सारंग

माधव ! मोहि काहेकी लाज ?
जनम जनम है रहो मैं ऐसो अभिमानी बेकाज ॥
कोटिक कर्म किये करुनामय या देहीके साज ।
निसिबासर बिषयारस रुचितें कबहुँ न आयो बाज॥
बहुत बार जल थल जग जायो भ्रम आयो दिन देव।
औगुनकी कछु सकुच न संका परि आई यह टेव॥

अब अनखाय कहौं घर अपने राखो बाँधि बिचारि ।
सूर स्वानके पालनहारे लावत है दिन गारि ॥

(१२०) राग रामकली

सरन गयेकों को न उबारयो ?
जब जब भीर परी भगतनपै
चक्र सुदरसन तहाँ सँभारयो ॥
भयो प्रसाद जु अंबरीषपै,
दुरबासाको क्रोध निवारयो ।
ग्वालन हेतु धरयो गोबर्धन
प्रगट इन्द्रको गर्ब प्रहारयो ॥
करो कृपा प्रहलाद भगतपै
खंभ फारि उर नखन बिदारयो ।
नरहरि रूप धरयो करुना करि
छिनक माहिं हिरनाकुस मारयो ॥
ग्राह ग्रसित गजको जल बूड़त
नाम लेत तुरतै दुख टारयो ।

सूर स्याम बिनु और करै को
रंगभूमिमें कंस पछारयो ॥

(१२१) राग धनाश्री

हमें नँदनंदन मोल लियो ।
जमकी फाँसि काटि मुकरायो अभय अजात कियो ॥
मूँड़ मुँड़ाय कंठ बनमाला चक्रके चिन्ह दियो ।
माथे तिलक स्रवन तुलसीदल मेटेउ अंग बियो ॥
सब कोउ कहत गुलाम स्यामको सुनत सिरात हियो ।
सूरदास प्रभुजूको चेरो जूठनि खाय जियो ॥

(१२२) राग नट

हरिसो ठाकुर और न जनको ।
जेहि जेहि बिधि सेवक सुख पावै
तेहि बिधि राखत तिनको ॥
भूखे बहु भोजन जु उदरको,
तृसा तोय, पट तनको ।

लग्यो फिरत सुरभी ज्यों सुत सँग,
उचित गमन गृह जनको ॥
परम उदार चतुर चिंतामन
कोटि कुबेर निधनको ।
राखत है जनकी परतिग्या
हाथ पसारत कनको ॥
संकट परे तुरत उठि धावत
परम सुभट निज पनको ।
कोटिक करै एक नहिं मानै,
सूर महा कृतघनको ॥

(१२३) राग धनाश्री

हरिसो मीत न देखौं कोई ।
अंतकाल सुमिरत तेहि अवसर आनि प्रतिच्छो होई॥
ग्राह गहे गजपति मुकरायो हाथ चक्र लै धायो ।
तजि बैकुंठ गरुड़ तजि श्री तजि निकट दासके आयो

दुरबासाको साप निवारयो अंबरीष पति राखी ।
ब्रह्मलोक परजंत फिरयो तहँ देव मुनीजन साखी ॥
लाखा-गृहतें जरत पांडु-सुत बुधि बल नाथ उबारे ।
सूरदास प्रभु अपने जनके नाना त्रास निवारे ॥

(१२४) राग देवगंधार

तुम मेरी राखो लाज हरी ।
तुम जानत सब अंतरजामी, करनी कछु न करी ॥
औगुन मोते बिसरत नाहीं, पल छिन घरी घरी ।
सब प्रपंचकी पोट बाँधिकै, अपने सीस धरी ॥
दारा-सुत-धन मोह लिये हैं, सुधि-बुधि सब बिसरी।
सूर पतितको बेग उधारो, अब मेरी नाव भरी ॥

(१२५) राग बिलावल

तुम गोपाल मोसों बहुत करी ।
नर देही दीनी सुमिरनको
मो पापीते कछु न सरी ॥ १ ॥

गरभ-बास अति त्रास अधोमुख
तहाँ न मेरी सुधि बिसरी ।
पावक जठर जरन नहिं दीनों
कंचन-सी मेरी देह करी ॥ २ ॥
जगमें जनमि पाप बहु कीने
आदि अंत लौं सब बिगरी ।
सूर पतित तुम पतित उधारन
अपने बिरदकी लाज धरी ॥ ३ ॥

दैन्य

(१२६) राग सारंग

हरि हौं सब पतितनको राव ।
को करि सकै बराबरि मेरी,
सो तौं मोहि बताव ॥
ब्याध गीध अरु पतित पूतना,
तिनमहँ बढ़ि जो और ।

तिनमें अजामील गनिका पति,
उनमें मैं सिरमौर ॥
जहँ तहँ सुनियत यहै बड़ाई,
मो समान नहिं आन ।
अब रहं आजु कालिके राजा,
मैं तिनमें सुलतान ॥
अबलौं तो तुम बिरद बुलायो,
भई न मोसों भेंट ।
तजौ बिरद कै मोहिं उधारो,
सूर गही कसि फेंट ॥

(१२७)

अब मैं नाच्यों बहुत गुपाल ।
काम-क्रोधको पहिरि चोलना,
कंठ बिषयकी माल ॥ १ ॥
महा-मोहके नूपुर बाजत,
निंदा शब्द रसाल ।

भरम भरयो मन भयो पखावज,
चलत कुसंगत चाल ॥ २ ॥
तृष्णा नाद करत घट भीतर,
नाना बिधि दै ताल ।
मायाको कटि फेंटा बाँध्यो,
लोभ तिलक दै भाल ॥ ३ ॥
कोटिक कला काँछि देखराई,
जलथल सुधि नहिं काल ।
सूरदासकी सबै अविद्या,
दूरि करो नँदलाल ॥ ४ ॥

(१२८) राग आसावरी

मोसम कौन कुटिल खल कामी ।
जिन तनु दियो ताहि बिसरायो,
ऐसा नमकहरामी ॥ १ ॥
भरि भरि उदर बिषयकों धायो,
जैसे सूकर-ग्रामी ।

हरिजन छाँड़ि हरी-बिमुखनकी,

निसिदिन करत गुलामी ॥ २ ॥

पापी कौन बड़ो जग मोतें,

सब पतितनमें नामी ।

सूर पतितको ठौर कहाँ है,

तुम बिनु श्रीपति स्वामी ॥ ३ ॥

(१२९) राग भैरवी

सुने री मैंने निरबलके बल राम ।

पिछली साख भरूँ संतनकी,

अड़े सँवारे काम ॥ १ ॥

जब लगि गज बल अपनो बरत्यो,

नेक सर्यो नहिं काम ।

निरबल है बल राम पुकार्यो,

आये आधे नाम ॥ २ ॥

द्रुपद-सुता निरबल भइ ता दिन,

तजि आये निज धाम ।

दुस्सासनकी भुजा थकित भई,

बसनरूप भये स्याम ॥ ३ ॥

अप-बल तप-बल और बाहु-बल,

चौथो है बल दाम ।

सूर किसोर-कृपातें सब बल,

हारेको हरि-नाम ॥ ४ ॥

(१३०) राग धनाश्री

पतितपावन हरि बिरद तुम्हारो कौने नाम धर्यो ।

हौं तो दीन-दुखित अति दुर्बल द्वारे रटत पर्यो ॥

चारि पदारथ दये सुदामहि तंदुल भेंट धर्यो ।

द्रुपद-सुताकी तुम पति राखी अंबर दान कर्यो॥

संदीपन-सुत तुम प्रभु दीने विद्या-पाठ कर्यो ।

सूरकी बिरियाँ निठुर भये प्रभु मोतें कछु न सर्यो॥

(१३१) राग सारंग

प्रभु हौं सब पतितनको राजा ।

पर निंदा मुख पूरि रह्यो, जग

यह निसान नित बाजा ॥

तृसना देसरु सुभट मनोरथ
इंद्रिय खड़ग हमारे।
मंत्री काम कुमत दैबेको
क्रोध रहत प्रतिहारे॥
गज अहँकार चढ़यो दिग-विजयी
लोभ छत्र धरि सीस।
फौज असत-संगतिकी मेरो
ऐसो हौं मैं ईस॥
मोह मदै बन्दी गुन गावत
मागध दोष अपार।
सूर पापको गढ़ दृढ़ कीनो
मुहकम लाइ किंवार॥

(१३२) राग सारंग

तुम हरि साँकरेके साथी।
सुनत पुकार परम आतुर है,
दौरि छुड़ायो हाथी॥ १॥

गर्भ परिच्छित रच्छा कीन्हीं,
बेद उपनिषद साखी ।
बसन बढ़ाय द्रुपद-तनयाके,
सभा माँझ पत राखी ॥ २ ॥
राज-खनि गाई व्याकुल है,
दै दै सुतका चीरक ।
मागध हति राजा सब छोरे,
ऐसे प्रभु पर-पीरक ॥ ३ ॥
कपट-स्वरूप धर्‌यो जब कोकिल
नृप प्रतीति कर मानी ।
कठिन परी तबहिं प्रभु प्रगटे,
रिपु हति सब सुखदानी ॥ ४ ॥
ऐसे कहौं कहाँलौ गुन-गान,
लिखित अन्त नहिं पइये ।
कृपासिंधु उनहीके लेखे,
मम लज्जा निरबहिये ॥ ५ ।

सूर तुम्हारी ऐसे निबही,
संकटके तुम साथी।
ज्यों जानों त्यों करो दीनकी,
बात सकल तुम हाथी ॥ ६ ॥

(१३३) राग नट

हे प्रभु ! मोहू तें बढ़ि पापी ?
घातक कुटिल चबाई कपटी
मोह क्रोध संतापी ॥ १ ॥
लंपट भूत पूत दमरीकौ
बिषय जाप नित जापी।
काम बिबस कामिनिहीके रस
हठ करि मनसा थापी ॥ २ ॥
भच्छ अभच्छ अपै पीवनको
लोभ लालसा धापी।
मन क्रम बचन दुसह सबहिनसों
कटुक बचन आलापी ॥ ३ ॥

जेते अधम उधारे प्रभु तुम
मैं तिन्हकी गति मापी ।
सागर सूर बिकार जल भरो
बधिक अजामिल बापी ॥ ४ ॥

(१३४) राग सारंग

हरि हौं सब पतितनको नायक ।
को करि सकै बराबरि मेरी और नहीं कोउ लायक ॥
जैसो अजामेलको दीनों सोइ पटो लिखि पाऊँ ।
तौ बिस्वास होइ मन मेरे औरो पतित बुलाऊँ ॥
यह मारग चौगुनो चलाऊँ तौ पूरो ब्योपारी ।
बचन मानि लै चलों गाँठि दै पाऊँ सुख अति भारी ॥
यह सुनि जहाँ तहाँतैं सिमटैं आइ होइँ इक ठौर ।
अबकी तौ अपनी लै आयों, बेर बहुरिकी और ॥
होड़ा होड़ी मन हुलास करि किये पाप भरि पेट ।
सबै पतित पाँयन तर डारौं इहै हमारी भेंट ॥

बहुत भरोसो जानि तुम्हारो अघ कीन्हे भरि भाँड़ो ।
लीजै नाथ निबेर तुरंतहिं सूर पतितको टाँड़ो ॥

(१३५) राग धनाश्री

तुम कब मोसो पतित उधारयो ।
काहेको प्रभु बिरद बुलावत बिनु मसकतको तारयो॥
गीध ब्याध पूतना जो तारी तिनपर कहा निहोरो ।
गनिका तरी आपनी करनी नाम भयो प्रभु तोरो ॥
अजामील द्विज जनम जनमको हुतो पुरातन दास ।
नेक चूकतें यह गति कीन्हीं पुनि बैकुंठहिं बास ॥
पतित जानिकै सब जन तारे रही न काहू खोट ।
तौ जानौं जो मोकहँ तारो सूर कूर कबि ढोट ॥

चेतावनी

(१३६) राग आसावरी

छाँड़ि मन, हरि-बिमुखनको संग ।
जिनके संग कुबुधि उपजति है, परत भजनमें भंग ॥
कहा होत पय पान कराये, बिष नहिं तजत भुजंग ।

कागहि कहा कपूर चुगाये, स्वान न्हवाये गंग ॥
खरको कहा अरगजा-लेपन, मरकट भूषन अंग ।
गजको कहा न्हवाये सरिता, बहुरि धरै खहि छंग ॥
पाहन पतित बाँस नहिं बेधत, रीतो करत निषंग ।
सूरदास खल कारी कामरि, चढ़त न दूजो रंग ॥

(१३७) राग आसावरी

भजन बिनु कूकर सूकर जैसा ।
जैसे घर बिलावके मूसा, रहत बिषय-बस तैसो ॥
बकी और बक गीध गीधनी, आइ जनम लिय वैसो ।
उनहूँके ये सुत दारा हैं, इन्हें भेद कहु कैसो ॥
जीव मारिकै उदर भरत हैं, तिनके लेखे ऐसो ।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु, मनो ऊँट खर भैंसो ॥

(१३८) राग आसावरी

भगति बिनु बैल बिराने ह्वैहौ ।
पाँव चारि, सिर सींग, गूँग मुख,
तब गुन कैसे गैहौ ।

टूटे कंध सु-फूटो नाकनि,

कौलौं धौं भुस खैहौ ॥

लादत जोतत लकुट बाजिहै

तब कहँ मूँड़ दुरैहौ ।

सीत घाम घन बिपति बहुत बिधि,

भार तरे मरि जैहौ ॥

हरि-दासनको कह्यो न मानत,

कियो आपुनो पैहौ ।

सूरदास भगवंत-भजन बिनु,

मिथ्या जनम गँवैहौ ॥

(१३९) राग भीमपलासी

रे मन जनम पदारथ जात ।

बिछुरे मिलन बहुरि कब ह्वैहैं,

ज्यौं तरुवरके पात ॥ १ ॥

सन्निपात कफकंठ बिरोधी,
रसना टूटी जात ।
प्रान लिये जम जात मूढ़मति,
देखत जननी तात ॥ २ ॥
छिन इक माँहि कोटि जुग बीतत,
फेरि नरककी बात ।
यह जग प्रीति सुआ सेमरकी
चाखत ही उड़ि जात ॥ ३ ॥
जमके फंद नहीं पड़ु बौरे,
चरनन चित्त लगात ।
कहत सूर बिरथा यह देही,
अंतर क्यों इतरात ॥ ४ ॥

(१४०) राग धनाश्री

सबै दिन गये बिषयके हेत ।
तीनौं पन ऐसे ही बीते, केस भये सिर सेत ॥

आँखिन अंध स्रवन नहिं सुनियत, थाके चरन समेत
गंगाजल तजि पियत कूपजल, हरि तजि पूजत प्रेत ॥
रामनाम बिनु क्यों छूटोगे, चंद्र गहे ज्यों केत ।
सूरदास कछु खरच न लागत, रामनाम मुख लेत ॥

(१४१)

सोई भलो जो रामहिं गावै ।
स्वपच प्रसन्न होइ बड़ सेवक,
बिनु गुपाल द्विज जन्म न भावै ॥ १ ॥
बाद-बिबाद जग्य ब्रत साधे,
कतहूँ जाइ जन्म डहकावै ।
होइ अटल जगदीस-भजनमें,
सेवा तासु चारि फल पावै ॥ २ ॥
कहूँ ठौर नहिं चरन-कमल बिनु,
भृंगी ज्यों दसहूँ दिसि धावै ।
सूरदास प्रभु संत-समागम,
आनँद अभय निसान बजावै ॥ ३ ॥

(१४२)

सबै दिन नाहिं एक-से जात ।

सुमिरन ध्यान कियो करि हरिको,

जब लगि तन कुसलात ॥ १ ॥

कबहूँ कमला चपला पाके,

टेढ़े टेढ़े जात ।

कबहुँक मग-मग धूरि टटोरत,

भोजनको बिलखात ॥ २ ॥

या देहीके गरब बावरो,

तदपि फिरत इतरात ।

बाद-बिबाद सबै दिन बीते,

खेलत ही अरु खात ॥ ३ ॥

हौं बड़, हौं बड़, बहुत कहावत,

सूधे करत न बात ।

जोग न जुगुति ध्यान नहिं पूजा,

बृद्ध भये अकुलात ॥ ४ ॥

बालापन खेलत ही खोयो,

तरुनापन अलसात ।

सूरदास अवसरके बीते,

रहिहौ पुनि पछितात ॥ ५ ॥

(१४३)

रे मन मूरख जनम गँवायो ।

कर अभिमान बिषयसों राच्यो,

नाम सरन नहिं आयो ॥ १ ॥

यह संसार फूल सेमरको,

सुंदर देखि लुभायो ।

चाखन लाग्यो रूई उड़ि गइ,

हाथ कछू नहिं आयो ॥ २ ॥

कहा भयो अबके मन सोचे,

पहिले नाहिं कमायो ।

सूरदास हरि-नाम-भजन बिनु,

सिर धुनि-धुनि पछितायो ॥ ३ ॥

(१४७)

जा दिन मन पंछी उड़ि जैहैं ।

ता दिन तेरे तनु-तरुवरके,

सबै पात झरि जैहैं ॥ १ ॥

घरके कहिहैं बेगहि काढ़ो,

भूत भये कोउ खैहैं ।

जा प्रीतमसों प्रीति घनेरी,

सोऊ देखि डरैहैं ॥ २ ॥

कहँ वह ताल कहाँ वह शोभा,

देखत धूरि उड़ैहैं ।

भाई बन्धु कुटुँब कबीला,

सुमिरि-सुमिरि पछितैहैं ॥ ३ ॥

बिना गुपाल कोऊ नहिं अपनो,

जस-कीरति रहि जैहैं ।

सो तो सूर दुर्लभ देवनको,

सत-संगतिमहँ पैहैं ॥ ४ ॥

(१४५) राग बागेश्री

हरि बिन कौन दरिद्र हरै ?

कहत सुदामा सुन सुंदरि जिय मिलन न हरि बिसरै

और मित्र ऐसे कुसमैमहँ कत पहिचान करै ।

बिपति परे कुसलात न बूझै, बात नहीं उचरै ॥

उठिके मिले तंदुल हम दीन्हें, मोहन बचन फुरै ।

सूरदास स्वामीकी महिमा, बिधि टारी न टरै ॥

(१४६) राग टोडी

अजहूँ सावधान किन होहि ।

माया बिषम भुजंगिनिको बिष उतरयो नाहिन तोहि ॥

कृष्ण सुमंत्र सुद्ध बन मूरी जिहि जन मरत जिवायो।

बार-बार स्रवनन समीप होइ गुरु गारुड़ी सुनायो ॥

जाग्यौ, मोह मैर मति छूटी, सुजस गीतके गाए ।

सूर गई अग्यान-मूरछा ग्यान-सुभेषज खाए ॥

(१५७) राग मलार

ऐसी करत अनेक जनम गये

मन संतोष न पायो ।

दिन दिन अधिक दुरासा लागी

सकल लोक फिरि आयो ॥ १ ॥

सुनि सुनि स्वर्ग रसातल भूतल

तहीं तहीं उठि धायो ।

काम क्रोध मद लोभ अगिनते

जरत न काहु बुझायो ॥ २ ॥

स्रक चंदन बनिता बिनोद सुख

यह जुर जरत बितायो ।

मैं अजान अकुलाइ अधिक लै

जरत माँझ घृत नायो ॥ ३ ॥

भ्रमि भ्रमि हौं हारयो हिय अपने

देखि अनल जग छायो ।

सूरदास प्रभु तुम्हरि कृपा बिनु
कैसे जात बुतायो ॥ ४ ॥

(१४८) राग बिलावल

कहा कमी जाके राम धनी ?
मनसा नाथ मनोरथ-पूरन
सुखनिधान जाकी मौज घनी ॥ १ ॥
अर्थ धर्म अरु काम मोच्छ फल
चार पदारथ देत छनी ।
इंद्र समान हैं जाके सेवक
मो बपुरेकी कहा गनी ॥ २ ॥
कहाँ कृपनकी माया कितनी
करत फिरत अपनी अपनी ।
खाइ न सकै खरच नहि जानै
ज्यों भुजंग सिर रहत मनी ॥ ३ ॥
आनँद मगन रामगुन गावैं
दुख संतापकी काटि तनी ।

सूर कहत जे भजत रामको
तिनसों हरिसो सदा बनो ॥ ४ ॥

(१४९) राग धनाश्री

कितक दिन हरि सुमिरन बिनु खोये ।
परनिंदा रसमें रसनाके जपने परत डबोये ॥
तेल लगाइ कियो रुचि मर्दन बस्त्रहिं मलि मलि धोये ।
तिलक लगाइ चले स्वामी बनि विषयनिके मुख जोये
काल बलीते सब जग कंपत ब्रह्मादिक हू रोये ।
सूर अधमकी कहौ कौन गति उदरि भरे पर सोये ॥

(१५०) राग बागेश्री

मोसम पतित न और गुसाईं !
औगुन मोते अजहुँ न छूटत, भली तजी अब ताईं ॥
जनम-जनम योंही भ्रमि आयो, कपि-गुंजाकी नाईं ।
परसत सीत जात नहिं क्योंहू, लै लै निकट बनाई ॥
मोह्यो जाइ कनक-कामिनिसों, ममता मोह बढ़ाई ।
रसना स्वादु मीन ज्यों उरझी, सूझत नहिं फंदाई ॥

सोवत मुदित भयो सुपनेमें, पाई निधि जो पराई ।
जागि परयो कछु हाथ न आयो, यह जगकी प्रभुताई
परसे नाहिं चरन गिरिधरके, बहुत करी अनिआई ।
सूर पतितकों ठौर और नहिं, राखि लेहु सरनाई ॥

(१५१) राग केदारो

तुम्हरो कृष्ण कहत कहा जात ।
बिछुरे मिलन बहुरि कब ह्वैहैं ज्यों तरवरके पात ॥
सीत बायु कफ कंठ बिरोध्यौ रसना टूटी बात ।
प्रान लिये जम जात मूढ़ मति देखत जननी तात ॥
छिनु एक माँह कोटि जुग बीतत, नरककी पाछे बात
यह जग प्रीति सुआ सेमर ज्यों चाखत ही उड़ि जात॥
जमकी त्रास नियर नहिं आवत चरनन चित्त लगात।
गावत सूर बृथा या देही इतनौ कत इतरात ॥

भक्त-महिमा

(१५२)

हम भगतनके भगत हमारे ।
सुन अरजुन परतिग्या मोरी यह ब्रत टरत न टारे ॥
भगतन काज लाज हिय धरिकैं पाँय पियादे धायौ ।
जहँ-जहँ भीर परै भगतनपै तहँ-तहँ होत सहायौ॥
जो भगतनसों बैर करत है सो निज बैरी मेरो ।
देख बिचार भगत-हित कारन हाँकत हौं रथ तेरो ॥
जीते जीत भगत अपनेकी हारे हार बिचारों ।
सूरश्याम जो भगत-बिरोधी चक्र सुदरसन मारों ॥

महिमा

(१५३) राग देवगंधार

जाको मनमोहन अंग करै ।
ताको केस खसै नहिं सिरतें जो जग बैर परै ॥

हिरनकसिपु परहारि थक्यो प्रहलाद न नेकु डरै ।
अजहूँ सुत उत्तानपादको राज करत न टरै ॥
राखी लाज द्रुपदतनयाकी कुरुपति चीर हरै ।
दुर्योधनको मान भंग करि बसन प्रवाह भरै ॥
बिप्र भगत नृप अंधकूप दियो, बलि पढ़ि बेद छरै ।
दीनदयालु कृपालु दयानिधि कापै कह्यो परै ॥
जब सुरपति कोप्यो ब्रज ऊपर कहिहू कछु न सरै ।
राखे ब्रजजन नँदके लाला गिरिधर बिरद धरै ॥
जाको बिरद है गरबप्रहारी सो कैसे बिसरै ।
सूरदास भगवंत-भजन करि, सरन गहे उधरै ॥

प्रकीर्ण

(१५४) राग कान्हरो

अविगत गति कछु कहत न आवै ।
ज्यों गूँगेहि मीठे फलको रस अंतरगत ही भावै ॥

परम स्वाद सब ही जु निरंतर अमित तोष उपजावै ।
मन बानीको अगम अगोचर सो जानै जो पावै ॥
रूप रेख गुन जाति जुगुति बिनु निरालंब मन
चकृत धावै ।
सब बिधि अगम बिचारहिं तातें सूर सगुन लीला
पद गावै ॥

(१५५) राग धनाश्री

दयानिधि तेरी गति लखि न परै ।
धर्म अधर्म, अधर्म धर्म करि अकरन करन करै ॥
जय अरु बिजय पाप कह कीनो ब्राह्मन साप दिवायो
असुरजोनि दीनी ताऊपर धरम उछेह करायो ॥
पिता बचन छंडै सो पापी सो प्रहलादै कीन्हो ।
तिनके हेत खंभते प्रगटे नरहरि रूप जु लीन्हो ॥
द्विज कुल-पतित अजामिल बिषयी गनिका प्रीति बढ़ाई
सुत हित नाम नरायन लीनो तिहि तुव पदवी पाई ॥

जग्य करत बैरोचनको सुत बेद बिहित बिधि कर्म ।
तिहि हठि बाँधि पतालहि दीनो कौन कृपानिधि धर्म
पतिबरता जालंधर जुबती प्रगटि सत्य तें टारी ।
अधम पुँसचली दुष्ट ग्रामकी सुआ पढ़ावत तारी ॥
दानी धर्म भानुसुत सुनियत तुमतें बिमुख कहावैं ।
बेद बिरुद्ध सकल पांडव सुत सो तुम्हरे जिय भावैं ॥
मुक्ति हेत जोगी बहु स्रम करैं, असुर बिरोधे पावै ।
अकथित कथित तुम्हारी महिमा सूरदास कह गावै ॥

वेदान्त

(१५६) राग आसावरी

अपुनपो आपुन ही बिसरयो ।
जैसे स्वान काँच-मन्दिरमें, भ्रमि भ्रमि भूसि मरयो ॥
हरि सौरभ मृग नाभि बसतु है, द्रुम तृन सूँघि मरयो
ज्यों सपनेमें रंक भूप भयो, तसकरि अरि पकरयो ॥
ज्यों केहरि प्रतिबिंब देखिकैं, आपुन कूप परयो ।

ऐसे गज लखि फटिक-सिलामें, दसननि जाइ अरयो
मरकट मूठि छाँड़ि नहिं दीनी, घर-घर द्वार फिरयो ।
सूरदास नलिनीको सुवटा, कहि कौने जकरयो ॥

लीला

(१५७) राग बिलावल

जागिये ब्रजराजकुँवर कमल कुसुम फूले ।
कुमुद-बृंद सकुचित भये भृंगलता भूले ॥ १ ॥
तमचुर खग रौर सुनहु बोलत बनराई ।
राँभति गौ खरिकनमें बछरा हित धाई ॥ २ ॥
बिधु मलीन रविप्रकास गावत नर-नारी ।
सूर स्याम प्रात उठौ अंबुज कर धारी ॥ ३ ॥

(१५८) राग गौरी

जसोदा हरि पालने झुलावै ।
हलरावै दुलराइ मल्हावै जोइ सोई कछु गावै ॥

मेरे लालको आउ निंदरिया काहे न आनि सुवावै ।
तू काहे न बेगि-सी आवै तोको कान्ह बुलावै ॥
कबहुँ पलक हरि मूँदि लेत हैं कबहुँ अधर फरकावै ।
सोवत जानि मौन है है रही कर कर सैन बतावै ॥
इहि अंतर अकुलाइ उठे हरि जसुमति मधुरे गावै ।
जो सुख सूर अमर मुनि दुर्लभ सो नँदभामिनि पावै॥

(१५९) राग बिलावल

जसुमति मन अभिलाष करै ।
कब मेरो लाल घुटुरुवन रेंगै
कब धरनी पग द्वैक धरै ॥
कब द्वै दंत दूधके देखौं
कब तुतरे मुख बैन झरै ।
कब नन्दहि कहि बाबा बोलै
कब जननी कहि मोहि ररै ॥
कब मेरो अँचरा गहि मोहन
जोइ सोइ कहि मोसों झगरै ।

कबधौं तनक-तनक कछु खैहैं
अपने करसों मुखहिं भरै ॥
कब हँसि बात कहैगो मोसों
छबि पेखत दुख दूरि टरै ।
स्याम अकेले आँगन छाँड़े
आपु गई कछु काज घरै ॥
एहि अंतर अँधबाइ उठी इक
गरजत गगनसहित थहरै ।
सूरदास ब्रज लोग सुनत धुनि
जो जहँ-तहँ सब अतिहि डरै ॥

(१६०) राग गौरी

लालन हौं वारी तेरे या मुख ऊपर ।
माई मेरिहि डीठि न लागै
तातें मसि बिंदा दयो भ्रूपर ॥ १ ॥
सर्बसु मैं पहिले ही दीनीं
नान्हीं नान्हीं दँतुली दूपर ।

अब कहा करों निछावरि सूर
जसोमति अपने लालन ऊपर ॥ २ ॥

(१६१) राग सारंग

लालन तेरे मुखपर हौं वारी ।
बाल-गोपाल लगौ इन नैननि
रोगु बलाइ तुम्हारी ॥ १ ॥
लट लटकन मोहन मसि बिंदुका
तिलक भाल सुखकारी ।
मनहुँ कमल अलिसावक पंगति
उड़त मधुर छबि भारी ॥ २ ॥
लोचन ललित कपोलनि काजर
छबि उपजत अधिकारी ।
मुख सनमुख औरे रुचि बाढ़ति
हँसत दै दै किलकारी ॥ ३ ॥
अल्प दसन कलबल करि बोलनि
बिधि नहिं परति बिचारी ।

निकसति दुति अधरनिके बिच ह्वै
मानो बिधुमें बीजु उज्यारी ॥ ४ ॥
सुंदरताको पार न पावति
रूप देखि महतारी ।
सूर सिंधुकी बूँद भई मिलि
मति गति दीठि हमारी ॥ ५ ॥

(१६२) राग देवगंधार

कहन लगे मोहन मैया मैया ।
पिता नंदसों बाबा बाबा अरु हलधरसों भैया ॥
ऊँचे चढ़ि चढ़ि कहत जसोदा लै लै नाम कन्हैया ।
दूरि कहूँ जिनि जाहु लला रे मारैगी काहूकी गैया ॥
गोपी ग्वाल करत कौतूहल घर घर लेत बलैया ।
मनि खंभन प्रतिबिंब बिलोकत नचत कुँवर निज पैया
नंद जसोदाजीके उरतें इह छबि अनत न जइया ।
सूरदास प्रभु तुमरे दरसको चरननकी बलि गइया॥

(१६३) राग बिलावल

बरनों बाल-भेष मुरारि ।

थकित जित-तित अमर-मुनि-गन नंदलाल निहारि
केस सिर बिन पवनके चहुँ दिसा छिटके झारि ।
सीसपर धरे जटा मानो रूप किय त्रिपुरारि ॥
तिलक ललित ललाट केसरि बिंदु सोभाकारि ।
अरुन रेखा जनु त्रिलोचन रह्यो निज पुरि जारि ॥
कंठ कठुला नील मनि, अंभोज-माल सँवारि ।
गरल ग्रीव, कपाल उर, यहि भाय भये मदनारि ॥
कुटिल हरि नख हिये हरिके हरषि निरखति नारि ।
ईस जनु रजनीस राख्यो भालहू ते उतारि ॥
सदन-रज तन स्याम सोभित सुभग इहि अनुहारि ।
मनहु अंग बिभूति, राजत संभु सो मधु-हारि ॥
त्रिदसपति-पति असनको अति जननिसों करि आरि
सूरदास बिरंचि जाको जपत निज मुख-चारि ॥

(१६४) राग रामकली

मेरो माई ऐसो हठी बालगोबिंदा ।

अपने कर गहि गगन बतावत खेलनको माँगै चंदा ।।
बासनकै जल धरयो जसोदा हरिको आनि दिखावै ।
रुदन करत ढूँढ़ै नहिं पावत धरनि चंद कैसे आवै ।।
दूध दही पकवान मिठाई जो कछु माँगु मेरे छौना ।
भौंरा चकई लाल पाटको लेडुवा माँगु खिलौना ।।
दैत्यदलन गजदंत उपारन कंसकेस धरि फंदा ।
सूरदास बलि जाइ जसोमति सुखसागर दुखखंदा ।।

(१६५) राग रामकली

मैया कबहिं बढ़ैगी चोटी ।

किती बार मोहिं दूध पिवत भई यह अजहूँ है छोटी ।।
तू जो कहति बलकी बेनी ज्यों ह्वैहै लाँबी मोटी ।
काढ़त गुहत न्हवावत ओंछति नागिनि-सी भुइँ लोटी
काचो दूध पिवावत पचि पचि देत न माखन रोटी ।
सूर स्याम चिरजिव दोउ भैया हरिहलधरकी जोटी।।

(१६६) राग गौरी

मैया मोहिं दाऊ बहुत खिझायो ।

मोसों कहत मोलको लीनो
तोहि जसुमति कब जायो ॥ १ ॥

कहा कहौं एहि रिसके मारे
खेलन हौं नहिं जातु ।

पुनि पुनि कहत कौन है माता
को है तुम्हरो तातु ॥ २ ॥

गोरे नंद जसोदा गोरी
तुम कत स्याम सरीर ।

चुटकी दै दै हँसत ग्वाल सब
सिखै देत बलबीर ॥ ३ ॥

तू मोहीको मारन सीखी
दाउहि कबहुँ न खीझै ।

मोहनको मुख रिस समेत लखि
जसुमति सुनि सुनि रीझै ॥ ४ ॥

सुनहु कान्ह बलभद्र चवाई
जनमत ही को धूत ।
सूर स्याम मोहि गोधनकी सौं
हौं माता तू पूत ॥ ५ ॥

(१६७) राग रामकली

मो देखत जसुमति तेरे ढोटा
अबहीं माटी खाई ।
इह सुनिकै रिस करि उठि धाई
बाँह पकरि लै आई ॥ १ ॥
इक करसों भुज गहि गाढ़े करि
इक कर लीने साँटी ।
मारति हौं तोहि अबहिं कन्हैया
बेगि न उगिलौ माटी ॥ २ ॥
ब्रज-लरिका सब तेरे आगे
झूँठी कहत बनाई ।

मेरे कहे नहीं तू मानति
दिखराओं मुँह बाई ॥ ३ ॥
अखिल ब्रह्मांड खंडकी महिमा
दिखराई मुख माहीं ।
सिंधु सुमेरु नदी बन परबत
चकित भई मन माहीं ॥ ४ ॥
करते साँटि गिरत नहि जानी
भुजा छाँड़ि अकुलानी ।
सूर कहै जसुमति मुख मूँदेउ
बलि गई सारँग-पानी ॥ ५ ॥

(१६८) राग गौरी

मैया री मोहिं माखन भावै ।
मधु मेवा पकवान मिठाई मोहिं नहीं रुचि आवै ॥
ब्रजजुबती इक पाछे ठाढ़ी सुनति स्यामकी बातैं ।
मन मन कहति कबहुँ अपने घर देखौं माखन खातैं ॥

बैठे जाय मथनियाँके ढिग, मैं तब रहौं छिपानी।
सूरदास प्रभु अंतरजामी ग्वालि मनहिंकी जानी ॥

(१६९) राग गौरी

जो तुम सुनहु जसोदा गोरी।
नँदनंदन मेरे मंदिरमें आजु करन गये चोरी ॥
हौं भई आनि अचानक ठाढ़ी कह्यो भवनमें कोरी।
रहे छिपाइ सकुचि रंचक ह्वै भई सहज मति भोरी ॥
जब गहि बाँह कुलाहल कीनो तब गहि चरन निहोरी
लगे लेन नैनन भरि आँसू तब मैं कानि न तोरी ॥
मोहिं भयो माखनको बिसमय रीती देखि कमोरी।
सूरदास प्रभु करत दिनहि दिन ऐसी लरकि-सलोरी

(१७०) राग तिलक

मैया मोरी, मैं नहिं माखन खायो।
भोर भयो गैयनके पाछे, मधुबन मोहिं पठायो।

चार पहर बंसीबट भटक्यो, साँझ परे घर आयो ॥
मैं बालक बहिंयनको छोटो, छींको किहि बिधि पायो
ग्वाल-बाल सब बैर परे हैं, बरबस मुख लपटायो ॥
तू जननी मनकी अति भोरी, इनके कहे पतियायो ।
जिय तेरे कछु भेद उपजिहै, जानि परायो जायो ॥
यह लै अपनी लकुट कमरिया, बहुतहि नाच नचायो
सूरदास तब बिहँसि जसोदा, लै उर कंठ लगायो ॥

(१७१) राग सोरठ

जसोदा तेरो भलो हियो है माई ।
कमलनयन माखनके कारन बाँधे ऊखल लाई ॥
जो संपदा देव मुनि दुरलभ सपनेहुँ दइ न दिखाई ।
याही ते तू गरब भुलानी घर बैठे निधि पाई ॥
सुत काहूको रोवत देखति दौरि लेत हिय लाई ।
अब अपने घरके लरिकासों इती कहा जड़ताई ॥
बारंबार सजल लोचन ह्वै चितवत कुँवर कन्हाई ।
कहा करौं बलि जाउँ छोरती तेरी सौंह दिवाई ॥

जो मूरति जल थलमें व्यापक निगम न खोजत पाई।
सो मूरति तू अपने आँगन चुटकी दै दै नचाई॥
सुरपालक सब असुर-सँहारक त्रिभुवन जाहि डराई।
सूरदास प्रभुकी यह लीला निगम नेति नित गाई॥

(१७२) राग गौरी

नंदनँदन मुख देखो माई।
अंग अंग छबि उगे मनहुँ रबि,
ससि अरु समर लजाई॥ १॥
खंजन मीन कुरंग भृंग
बारिज पर अति रुचि पाई।
स्रुतिमंडल कुंडल बिंबि मकर सु
बिलसत मदन सहाई॥ २॥
कंठ कपोत कीर बिद्रुमपर
दारिम कननि चुनाई।
दुइ सारँग बाहनपर मुरली
आई देत दोहाई॥ ३॥

मोहे थिर चर बिटप बिहंगम
ब्योम बिमान थकाई ।
कुसुमांजुलि बरसत सुर ऊपर
सूरदास बलि जाई ॥ ४ ॥

(१७३) राग बिहागरो

नटवर बेष काछे स्याम ।
पद कमल नख इंदु सोभा ध्यान पूरन काम ॥
जानु जंघ सुघट निकाई नाहि रंभा तूल ।
पीत पट काछनी मानहु जलज-केसरि झूल ॥
कनक छुद्रावली पंगति नाभि कटिके भीर ।
मनहुँ हंस रसाल पंगति रहे हैं हृद तीर ॥
झलक रोमावली सोभा ग्रीव मोतिनहार ।
मनहुँ गंगा बीच जमुना चली मिलिकै धार ॥
बाहुदंड बिसाल तट दोउ अंग चंदन रेन ।
तीर तरु बनमालकी छबि ब्रज जुबति सुख देन ॥

चिबुकपर अधरन दसन दुति बिंब बीजु लजाइ ।
नासिका शुक नैन खंजन कहत कबि सरमाइ ॥
स्रवन कुंडल कोटि रबि छबि भृकुटि काम कोदंड ।
सूर प्रभु है नीमके तर सिर धरे सीखंड ॥

(१७४) राग गौरी

बिछुरत श्रीब्रजराज आज सखि,
नैननिकी परतीति गई ।
उड़ि न मिले हरि संग बिहंगम,
ह्वै न गये घनस्याममई ॥ १ ॥
याते क्रूर कुटिल सह मेचक,
बृथा मीन छबि छीन लई ।
रूपरसिक लालची कहावत,
सो करनी कछु तौ न भई ॥ २ ॥
अब काहे सोचत जल मोचत,
समय गये नित सूल नई ।

सूरदास याहीतें जड़ भए,

जबतें पलकन दगा दई ॥ ३ ॥

(१७५) राग जिल्हा

चले गये दिलके दामनगीर ।

जब सुधि आवे प्यारे दरसकी उठत कलेजे पीर ।

नटवर भेष नयन रतनारे सुंदर स्याम सरीर ॥

आपन जाय द्वारका छाए खारी नदके तीर ।

ब्रजगोपिनको प्रेम बिसारयो ऐसे भए बेपीर ॥

बृंदाबन बंसीबट त्याग्यो निरमल जमुना नीर ।

सूरस्याम ललिता उठ बोली आखिर जाति अहीर ॥

(१७६) राग धनाश्री

ऊधो मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं ।

हंससुताकी सुंदर कलरव अरु तरुवनकी छाहीं ॥

वे सुरभी वे बच्छ दोहनी खिरक दुहावन जाहीं ।

ग्वालबाल सब करत कुलाहल नाचत गह-गह बाहीं॥

यह मथुरा कंचनकी नगरी मनि-मुक्ता जिहि माहीं।
जबहिं सुरत आवत वा सुखकी जिया उमगत सुध नाहीं
अनगिन भाँति करी बहु लीला जसुदा-नंद निबाहीं।
सूरदास प्रभु रहे मौन मह यह कह-कह पछिताहीं॥

(१७७) राग बिलावल

ऊधो इतनो कहियो जाई।
हम आवैंगे दोऊ भैया मैया जनि अकुलाई॥
याको बिलग बहुत हम मान्यो जो कहि पठयो धाई।
वह गुन हमको कहा बिसरिहैं बड़े किये पय प्याई॥
और जु मिल्यो नंद बाबासों तौ कहियो समुझाई।
तौलौं दुखी होन नहिं पावैं धवरी धूमरि गाई॥
जद्यपि यहाँ अनेक भाँति सुख तदपि रह्यो न जाई।
सूरदास देखौं ब्रजबासिन तबहिं हियो हरखाई॥

(१७८) राग सोरठ

मनौं हौं ऐसे ही मरि जैहौं।
इहि आँगन गोपाल लालको कबहुँक कनियाँ लैहौं॥

कब वह मुख बहुरो देखौंगी कब वैसो सचु पैहौं ।
कब मोपै माखन माँगैगो कब रोटी धरि देहौं ॥
मिलन आस तन प्रान रहत हैं दिन दस मारग चैहौं ।
जो न सूर कान्ह आइहैं तौ जाइ जमुन धँसि लैहौं ॥

(१७९) राग रामकली

सँदेसो देवकी सों कहियो ।
हौं तो धाइ तुम्हारे सुतकी मया करत नित रहियो ॥
जदपि टेव तुम जानत उनकी तऊ मोहिं कहि आवै ।
प्रातहिं उठत तुम्हारे कान्हको माखन रोटी भावै ॥
तेल उबटनो अरु तातो जल ताहि देखि भगि जावै ।
जोइ जोइ माँगत सोइ सोइ देती क्रम क्रम करि करि न्हावै
सूर पथिक सुनि मोहिं रैन दिन बढ़यो रहत उर सोच
मेरो अलक लडैतो मोहन ह्वैहै करत सकोच ॥

(१८०) राग धनाश्री

सुनहु गोपी हरिको संदेस ।
करि समाधि अंतर्गति ध्यावहु यह उनको उपदेस ॥

वह अबिगति अबिनासी पूरन सब घट रह्यो समाई ।
निरगुन ग्यान बिनु मुक्ति नहीं है बेद-पुरानन गाई ॥
सगुन रूप तजि निरगुन ध्यावो इक चित इक मन लाई
यह उपाय करि बिरह तरी तुम मिलै ब्रह्म तब आई ॥
दुसह सँदेस सुनत माधोको गोपीजन बिलखानी ।
सूर बिरहकी कौन चलावै बूड़त मन बिन पानी ॥

(१८१) राग बिहाग

मधुकर स्याम हमारे चोर ।
मन हर लियो माधुरी मूरत निरख नयनकी कोर ॥
पकरे हुते आन डर अंतर प्रेम प्रीतिके जोर ।
गये छुड़ाय तोर सब बंधन दै गये हँसन अकोर ॥
उचक परों जागत निसि बीते तारे गिनत भई भोर ।
सूरदास प्रभु हत मन मेरो सरबस लै गयो नंदकिसोर

(१८२) राग सारंग

ऊधो मन न भये दस बीस ।
एक हुतो सो गयो स्याम सँग को अवराधै ईस ॥

इंद्री सिथिल भई केसो बिन ज्यों देही बिन सीस ।
आसा लगी रहत तनु स्वासा जीजो कोटि बरीस ॥
तुम तो सखा स्यामसुंदरके सकल जोगके ईस ।
सूरदास वा रसकी महिमा जो पूँछै जगदीस ॥

(१८३) राग केदारो

गोकुल सबै गोपाल उपासी ।
जोग अंग साधत जे ऊधो
ते सब बसत ईसपुर कासी ॥ १ ॥
जद्यपि हरि हम तजि अनाथ करि
तदपि रहति चरनन रस रासी ।
अपनी सीतलताहि न छाँड़त
जद्यपि है ससि राहु-गरासी ॥ २ ॥
का अपराध जोग लिखि पठवत
प्रेम भजन तजि करन उदासी ।
सूरदास ऐसी को बिरहिनि
माँगति मुक्ति तजे धन रासी ॥ ३ ॥

(१८४) राग मलार

हमरे कौन जोग ब्रत साधै ?
मृग त्वच, भस्म, अधारि, जटाको, को इतनो अवराधै
जाकी कहूँ थाह नहिं पैये अगम, अपार, अगाधै ।
गिरिधरलाल छबीले मुखपर, इते बाँध को बाँधै ?
आसन पवन भूति मृगछाला, ध्याननि को अवराधै ।
सूरदास मानिक परिहरिकै, राख गाँठिको बाँधै ॥

(१८५) राग सारंग

निर्गुन कौन देसको बासी ?
मधुकर ! हँसि-समुझाय सौंह दै,
बूझति साँच, न हाँसी ॥ १ ॥
को है जनक, जननि को कहियत,
कौन नारि, को दासी ।
कैसो बरन भेस है कैसो,
केहि रसमें अभिलासी ॥ २ ॥

पावैगो पुनि कियो आपनो,

जो रे! कहैगो गाँसी।

सुनत मौन ह्वै रह्यो ठग्यो सो,

सूर सबै मति नासी ॥ ३ ॥

(१८६) राग सारंग

बिनु गुपाल बैरिन भईं कुंजैं।

तब ये लता लगति अति सीतल,

अब भईं बिषम ज्वालकी पुंजैं॥ १॥

बृथा बहति जमुना, खग बोलत,

बृथा कमल फूलै अलि गुंजैं।

पवन, पानि, घनसार, सजीवनि,

दधि सुत किरन भानु भईं भुंजैं॥ २॥

ये ऊधो कहियो माधवसों,

बिरह करद कर मारत लुंजैं।

सूरदास प्रभुको मग जोवत,

अँखियाँ भईं बरन ज्यों गुंजैं॥ ३॥

(१८७) राग सोरठ

अब या तनहिं राखि का कीजै ।

सुन री सखी ! स्यामसुंदर बिनु,
बाँटि बिषम बिष पीजै ॥ १ ॥

कै गिरिए गिरि चढ़िकै सजनी,
स्वकर सीस सिव दीजै ।

कै दहिये दारुन दावानल,
जाय जमुन धँसि लीजै ॥ २ ॥

दुसह बियोग बिरह माधवके
कौन दिनहिं दिन छीजै ।

सूरदास प्रीतम बिन राधे,
सोचि-सोचि मन खीजै ॥ ३ ॥

(१८८) राग गौरी

कहाँ लौं कहिये ब्रजकी बात ।

सुनहु स्याम तुम बिनु उन लोगइ जैसे दिवस बितात
गोपी गाइ ग्वाल गोसुत वह मलिन बदन कृस गात ।

परमदीन जनु सिसिर हिमी हित अंबुजगन बिनु पात
जा कहुँ आवत देखि दूरते सब पूछति कुसलात ।
चलन न देत प्रेम आतुर उर कर चरनन लपटात ॥
पिक चातक बन बसनन पावहि बायस बलिहि न खात
सूरस्याम संदेसनके डर पथिक न उहि मग जात ॥

(१८९) राग सारंग

निसिदिन बरसत नैन हमारे ।
सदा रहत पावस ऋतु हमपर, जबतें स्याम सिधारे॥
अंजन थिर न रहत अँखियनमें, कर कपोल भये कारे।
कंचुकि-पट सूखत नहिं कबहूँ, उर बिच बहत पनारे
आँसू सलिल भये पग थाके, बहे जात सित तारे ।
सूरदास अब डूबत है ब्रज, काहे न लेत उबारे॥

(१९०) राग मलार

मधुकर ! इतनी कहियहु जाइ ।
अति कृस-गात भई ये तुम बिनु, परम दुखारी गाइ ॥

जल-समूह बरसत दोउ आँखैं, हूँकति लीन्हें नाउँ ।
जहाँ-जहाँ गोदोहन कीनों, सूँघति सोई ठाउँ ॥
परति पछार खाइ छिनहीं छिन, अति आतुर ह्वै दीन।
मानहुँ सूर काढ़ि डारी है, बारि-मध्यतें मीन ॥

(१९१) राग धनाश्री

नैना भये अनाथ हमारे ।
मदनगुपाल यहाँते सजनी, सुनियत दूरि सिधारे ॥
वै हरि जल हम मीन बापुरी, कैसे जिवहिं नियारे ।
हम चातक चकोर स्यामल घन, बदन सुधानिधि प्यारे
मधुबन बसत आस दरसनकी नैन जोइ मग हारे ।
सूरजस्याम करी पिय ऐसी, मृतक हुते पुनि मारे ॥

(१९२) राग मलार

रुक्मिनि मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं ।
वा क्रीड़ा खेलत जमुना-तट, बिमल कदमकी छाहीं ॥
गोपबधूकी भुजा कंठ धरि, बिहरत कुंजन माहीं ।
अमित बिनोद कहाँ लौं बरनौं, मो मुख बरनि न जाहीं

सकल सखा अरु नंद जसोदा वे चितते न टराहीं।
सुतहित जानि नंद प्रतिपाले, बिछुरत बिपति सहाहीं
जद्यपि सुखनिधान द्वारावति, तोउ मन कहुँ न रहाहीं
सूरदास प्रभु कुंज-बिहारी, सुमिरि सुमिरि पछिताहीं

प्रेम

(१९३) राग सारंग

आजु हौं एक-एक करि टरिहौं।
कै हमहीं, कै तुमही माधव, अपुन भरोसे लरिहौं ॥
हौं तो पतित सात पीढ़िनको पतितै ह्वै निस्तरिहौं ।
अब हौं उघरि नचन चाहत हौं तुम्हैं बिरद बिनु करिहौं
कत अपनी परतीति नसावत, मैं पायो हरि हीरा ।
सूर पतित तबहीं लै उठिहै, जब हँसि दैहो बीरा॥

(१९४)

वा पट पीतकी फहरान !
कर धरि चक्रचरनकी धावनि, नहिं बिसरत वह बान

रथते उतरि अवनि आतुर ह्वै, कच-रजकी लपटान।
मानो सिंह सैलतें निकस्यो, महामत्त गज जान॥
जिन गुपाल मेरो प्रन राख्यो, मेटि बेदकी कान।
सोई सूर सहाय हमारे, निकट भये हैं आन॥

(१९५)

आजु जो हरिहिं न सस्त्र गहाऊँ।
तौ लाजौं गंगा-जननीको, सांतनु-सुत न कहाऊँ॥
स्यंदन खंडि महारथ खंडौं, कपिध्वज सहित डुलाऊँ
इती न करौं सपथ मोहिं हरिकी, छत्रिय-गतिहिं न पाऊँ
पांडव-दल सनमुख ह्वै धाऊँ, सरिता रुधिर बहाऊँ।
सूरदास रनभूमि बिजय बिनु, जियत न पीठ दिखाऊँ

(१९६) राग भीमपलासी

सबसों ऊँची प्रेम सगाई।
दुरजोधनके मेवा त्यागे, साग बिदुर घर खाई॥
जूँठे फल सबरीके खाये, बहु बिधि स्वाद बताई।
प्रेमके बस नृप सेवा कीन्हीं, आप बने हरि नाई॥

राजसु-जग्य जुधिष्ठिर कीन्हों तामें जूँठ उठाई ।
प्रेमके बस पारथ रथ हाँक्यो, भूलि गये ठकुराई ॥
ऐसी प्रीति बढ़ी बृंदाबन, गोपिन नाच नचाई ।
सूर कूर इहि लायक नाहीं, कहँ लगि करौं बड़ाई॥

(१९७) राग खमाच

अब तो प्रगट भई जग जानी ।
वा मोहनसों प्रीति निरंतर, क्यों निबहैगी छानी ॥
कहा करौं सुंदर मूरति,इन नयननि माँझि समानी ।
निकसत नाहिं बहुत पचि हारी,रोम रोम अरुझानी॥
अब कैसे निर्बारि जाति है, मिल्यौ दूध ज्यों पानी ।
सूरदास प्रभु अंतरजामी, उर अंतरकी जानी ॥

(१९८)

सोइ रसना जो हरिगुन गावै ।
नैननकी छबि यहै चतुरता,
ज्यों मकरंद मुकुंदहि ध्यावै ॥ १ ॥

निर्मल चित तौ सोई साँचो,
कृष्ण बिना जिय और न भावै ।
स्रवननकी जु यहै अधिकाई,
सुनि हरि-कथा सुधारस प्यावै ॥ २ ॥
कर तेई जे स्यामहिं सेवै,
चरननि चलि बृंदाबन जावै ।
सूरदास जैये बलि ताके,
जो हरिजू सों प्रीति बढ़ावै ॥ ३ ॥

(१९९) राग बिलावल

ऐसी प्रीतिकी बलि जाउँ ।
सिंहासन तजि चले मिलनको सुनत सुदामा नाउँ ॥
गुरु बांधव अरु बिप्र जानिकै चरनन हाथ पखारे ।
अंकमाल दै कुसल बूझिकै सिंहासन बैठारे ॥
अरधंगी बूझत मोहनको कैसे हितू तुम्हारे ।
दुर्बल हीन छीन देखतिहौं पाउँ कहाँते धारे ॥

संदीपनके हम रु सुदामा पढ़े एक चटसार ।
सूरस्यामकी कौन चलावै भक्तन कृपा अपार ॥

(२००) राग कान्हरा

जाको मन लाग्यो नंदलालहिं
ताहि और नहिं भावे हो ॥ १ ॥
ज्यों गूँगो गुर खाइ अधिक रस
सुख सवाद न बतावे हो ॥ २ ॥
जैसे सरिता मिलै सिंधुको
बहुरि प्रवाह न आवे हो ॥ ३ ॥
ऐसे सूर कमललोचनते
चित नहिं अनत डुलावे हो ॥ ४ ॥

(२०१) राग सोरठ

मोहन इतनो मोहिं चित धरिये ।
जननी दुखित जानिकै कबहूँ मथुरागमन न करिये ॥
यह अक्रूर क्रूर कृत रचिकै, तुमहिं लेन है आयो ।
तिरछे भये कर्म कृत पहिले, विधि यह ठाठ बनायो ॥

बार बार जननी कहि मोसों माखन माँगत जौन ।
सूर तिनहिं लेबैको आयो करिहै सूनो भौन॥३॥

(२०२) राग सारंग

प्रीति करि काहू सुख न लह्यो ।
प्रीति पतंग करी दीपकसों आपै प्रान दह्यो ॥
अलिसुत प्रीति करी जलसुतसों करि मुख माँहि गह्यो
सारँग प्रीति करी जो नादसों सन्मुख बान सह्यो ॥
हम जो प्रीति करी माधवसों चलत न कछू कह्यो।
सूरदास प्रभु बिनु दुख दूनो नैननि नीर बह्यो ॥

(२०३) राग बिलावल

नाहिंन रह्यो हियमें ठौर ।
नंद-नंदन अछत कैसे, आनिये उर और ॥
चलत चितवत दिवस जागत, स्वप्न सोवत रात ।
हृदयतें वह स्याम मूरति, छिन न इत उत जात ॥
कहत कथा अनेक ऊधो ! लोक लाज दिखात ।
कहा करौं तन प्रेम-पूरन, घट न सिंधु समात ॥

स्यामगात सरोज आनन, ललित गति मृदु हास ।
सूर ऐसे रूप कारन, मरत लोचन प्यास ॥

(२०४) राग सोरठ

हम न भईं बृंदावन-रेनु ।
जिन चरनन डोलत नँदनंदन
नित प्रति चारत धेनु ॥ १ ॥
हमतें धन्य परम ये द्रुम-बन
बाल बच्छ अरु धेनु ।
सूर सकल खेलत हँसि बोलत
ग्वालन सँग मथि पीवत धेनु ॥ २ ॥

(२०५) राग धनाश्री

अँखियाँ हरि-दरसनकी भूखी ।
अब क्यों रहति स्याम रँग राती,
ए बातैं सुनि रूखी ॥ १ ॥
अवधि गनत इकटक मग जोवत,
तब ए इतौं नहिं झूखी ।

इते मान इहि जोग सँदेसन,

सुनि अकुलानी दूखी ॥ २ ॥

सूर सकत हठ नाव चलावत,

ए सरिता हैं सूखी ।

बारक वह मुख आनि देखावहु,

दुहि पै पिवत पतखी ॥ ३ ॥

(२०६)

अँखियाँ हरि-दरसनकी प्यासी ।

देख्यो चाहत कमलनैनको, निसिदिन रहत उदासी

केसर तिलक मोतिनकी माला, बृंदाबनके बासी ।

नेह लगाय त्यागि गये तृन सम, डारि गये गल-फाँसी॥

काहूके मनकी को जानत, लोगनके मन हाँसी ।

सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस बिन, लैहों करवत कासी॥

(२०७) राग भैरव

ऐसेहि बसिये ब्रजकी बीथिन ।
साधुनिके पनवारे चुनि चुनि
उदरि जु भरिये सीतनि ॥ १ ॥
पैंड़ेमेंके बसन बीनि तन
छाया परम पुनीतनि ।
कुंज-कुंज तर लोटि-लोटि रचि
रज लागै रंगीतनि ॥ २ ॥
निसि दिन निरखि जसोदानंदन
अरु जमुना जल पीतनि ।
दरसन सूर होत तन पावन,
दरस न मिलत अतीतनि ॥ ३ ॥

(२०८) राग देवगंधार

मोहि प्रभु तुमसों होड़ परी ।
ना जानों करिहौ जु कहा तुम नागर नवल हरी ॥

पतित समूहन उद्धरिबेको तुम जिय जक पकरी ।
मैं जू राजिवनैननि दुरि गयो पाप-पहार दरी ॥
एक अधार साधु-संगतिको रचि पचिकै सँचरी ।
भई न सोचि सोचि जिय राखी अपनी धरनि धरी ॥
मेरी मुकति बिचारत हौ प्रभु पूँछत पहर घरी ।
स्रमतें तुम्हैं पसीनो ऐहै कत यह जकनि करी ॥
सूरदास बिनती कहा बिनवै दोसहिं देह भरी ।
अपनो बिरद सँभारहुगे तब यामें सब निनुरी ॥

श्रीकबीरदासजी

नाम-महिमा

(२०९) राग खमाच

भजो रे भैया राम गोविंद हरी ।
जप तप साधन कछु नहिं लागत, खरचत नहिं गठरी
संतत संपत सुखके कारन, जासों भूल परी ॥२॥
कहत कबीरा राम न जा मुख, ता मुख धूल भरी ॥३॥

(२१०) राग केदारो

तू तो राम सुमर जग लड़वा दे ।
कोरा कागज काली स्याही,
लिखत पढ़त वाको पढ़वा दे ॥ १ ॥
हाथी चलत है अपनी गतमें,
कुतर भुकत वाको भुकवा दे ॥ २ ॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो,
नरक पचत वाको पचवा दे ॥ ३ ॥

नाम

(२११)

जो जन लेहिं खसमका नाउँ,
तिनके सद बलिहारी जाउँ ॥ १ ॥
जो गुरुके निर्मल गुन गावै,
सो भाई मोरे मन भावै ॥ २ ॥
जेहिं घट नाम रह्यो भरपूर,
तिनकी पग-पंकज हम धूर ॥ ३ ॥
जाति जुलाहा मतिका धीर,
सहज-सहज गुनि लेहि कबीर ॥ ४ ॥

(२१२) राग भैरवी–ताल तेवरा

मत कर मोह तू, हरि भजनको मान रे ।
नयन दिये दरसन करनेको, स्रवन दिये सुन ज्ञान रे॥
बदन दिया हरिगुन गानेको, हाथ दिये कर दान रे।
कहत कबीर सुनो भई साधो, कंचन निपजत खान रे

चेतावनी

(२१३) राग आसावरी-दीपचन्दी

मन तोहे किहि बिध मैं समझाऊँ ।
सोना होय तो सुहाग मँगाऊँ बंकनाल रस लाऊँ ।
ग्यान सबदकी फूँक चलाऊँ, पानी कर पिघलाऊँ ॥
घोड़ा होय तो लगाम लगाऊँ ऊपर जीन कसाऊँ ।
होय सवार तेरेपर बैठूँ, चाबुक देके चलाऊँ ॥
हाथी होय तो जंजीर गढ़ाऊँ, चारों पैर बँधाऊँ ।
होय महावत तेरेपर बैठूँ, अंकुश लेके चलाऊँ ॥
लोहा होय तो ऐरण मँगाऊँ ऊपर धुवन धुवाऊँ ।
धूवनकी घनघोर मचाऊँ जंतर तार खिंचाऊँ ॥
ग्यानी न हो ग्यान सिखाऊँ सत्यकी राह चलाऊँ ।
कहत कबीर सुनो भई साधू अमरापुर पहुँचाऊँ ॥

(२१४) राग बरवा काफी-तीन ताल

जन्म तेरा बातों ही बीत गयो ।
तूने कबहुँ न कृष्ण कह्यो ॥ध्रु०॥

पाँच बरसका भोलाभाला अब तो बीस भयो ।
मकरपचीसी माया कारन देस बिदेस गयो ॥
तीस बरसकी अब मति उपजी लोभ बढ़े नित नयो।
माया जोरी लाख करोरी अजहुँ न तृप्त भयो ॥
बृद्ध भयो तब आलस उपजी कफ नित कंठ रह्यो ।
संगति कबहुँ न कीनी बिरथा जन्म गयो ॥
यह संसार मतलबका लोभी झूँठा ठाट रच्यो ।
कहत कबीर समझ मन मूरख तू क्यों भूल गयो ॥

(२१५) राग काफी

तोरी गठरीमें लागे चोर बटोहिया का सोवै ॥टेक॥
पाँच पचीस तीन हैं चुरवा, यह सब कीन्हा सोर।
जागु सबेरा बाट अनेरा, फिर नहिं लागै जोर ॥
भवसागर इक नदी बहतु है, बिन उतरे जाब बोर ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो ! जागत कीजै भोर ॥

(२१६)

कौनो ठगवा नगरिया लूटल हो ॥टेक॥

चंदन काठकै बनल खटोलना,
तापर दुलहिन सूतल हो ॥ १ ॥

उठो री सखी मोरी माँग सँवारौ,
दुलहा मोसे रूठल हो ॥ २ ॥

आये जमराज पलँग चढ़ि बैठे,
नैनन अँसुआ टूटल हो ॥ ३ ॥

चारि जने मिलि खाट उठाइन,
चहुँदिसि घू घू ऊठल हो ॥ ४ ॥

कहत कबीर सुनो भाई साधो !
जगसे नाता छूटल हो ॥ ५ ॥

(२१७) राग बिलावल

रहना नहिं देस बिराना है ।

यह संसार कागदकी पुड़िया,
बूँद पड़े घुल जाना है ॥ १ ॥

यह संसार काँटकी झाड़ी,

उलझ पुलझ मरि जाना है ॥ २ ॥

यह संसार झाड़ औ झाँखर,

आग लगे बरि जाना है ॥ ३ ॥

कहत कबीर सुनो भाई साधो !

सतगुरु नाम ठिकाना है ॥ ४ ॥

(२१८) राग बागेश्री

बीत गये दिन भजन बिना रे !

बाल अवस्था खेल गँवायो,

जब जवानि तब मान घना रे ॥१॥

लाहे कारन मूल गँवायो,

अजहुँ न गइ मन की तृसना रे ।

कहत कबीर सुनो भाई साधो !

पार उतर गये संत जना रे ॥ २ ॥

(२१९) राग सारंग

माया महा ठगिनि हम जानी ।

निरगुन फाँस लिये कर डोलै बोलै मधुरी बानी ॥

केसवके कमला ह्वै बैठी, शिवके भवन भवानी ।
पंडाके मूरति ह्वै बैठी, तीरथमें भइ पानी ॥
जोगीके जोगिन ह्वै बैठी, राजाके घर रानी ।
काहूके हीरा ह्वै बैठी, काहूके कौड़ी-कानी ॥
भगतनके भगतिन ह्वै बैठी, ब्रह्माके ब्रह्मानी ।
कहत कबीर सुनो हो सन्तो ! यह सब अकथ कहानी

(२२०)

मैं केहि समुझावों सब जग अंधा ।
इक दुइ होय उन्हैं समुझावों,
सबहि भुलाना पेटके धंधा ।
पानीके घोड़ा पवन असवरवा,
ढरकि परै जस ओसके बुंदा ॥ १ ॥
गहिरी नदिया अगम बहै धरवा,
खेवनहाराके पड़िगा फंदा ।
घरकी बस्तु नजर नहिं आवत,
दियना बारिके ढूँढ़त अंधा ॥ २ ॥

लागी आग सबै बन जरिगा,

बिनु गुरु ज्ञान भटकिगा बंदा ।

कहैं कबीर सुनो भाई साधो !

इक दिन जाय लंगोटी-झार बंदा ॥ ३ ॥

(२२१) राग सारंग

धुबिया जल बिच मरत पियासा ॥टेक॥

जलमें ठाढ़ पियै नहिं मूरख, अच्छा जल है खासा ।

अपने घरकै मरम न जानै करै धुबियनकै आसा ॥

छिनमें धुबिया रोवै धोवै, छिनमें होय उदासा ।

आपै बँधै करमकी रस्सी, आपन गरकै फाँसा ॥

सच्चा साबुन लेहि न मूरख, है संतनके पासा ।

दाग पुराना छूटत नाही धोवत बारह मासा ॥

एक रातिको जोरि लगावै, छोरि दिये भरि मासा ।

कहैं कबीर सुनो भाई साधो, आछत अन्न उपासा ॥

(२२२)

जागु पियारी, अब का सोवै ।
रैन गई दिन काहेको खोवै ॥
जिन जागा तिन मानिक पाया ।
तैं बौरी सब सोय गँवाया ॥
पिय तेरे चतुर तू मूरख नारी ।
कबहुँ न पियकी सेज सँवारी ॥
तैं बौरी बौरापन कीन्हों ।
भर जोबन पिय अपन न चीन्हों ॥
जागु देख पिय सेज न तेरे ।
तोहि छाँड़ि उठि गये सबेरे ॥
कह कबीर सोई धुन जागे ।
सब्द-बान उर अंतर लागे ॥

प्रेम

(२२३) राग काफी

नैहरवा हमकाँ न भावै ॥टेक॥
साईंकी नगरी परम अति सुंदर,
जहँ कोई जाय न आवै ।

चाँद सुरज जहँ पवन न पानी,

को सँदेस पहुँचावै ॥

दरद यह साईंको सुनावै ॥ १ ॥

आगे चलौं पंथ नहिं सूझै,

पीछे दोष लगावै ।

केहि बिधि ससुरे जाउँ मोरी सजनी,

बिरहा जोर जनावै ॥

बिषैरस नाच नचावै ॥ २ ॥

बिन सतगुरु अपनो नहिं कोई,

जो यह राह बतावै ।

कहत कबीर सुनो भाई साधो,

सुपने न पीतम पावै ॥

तपन यह जियकी बुझावै ॥ ३ ॥

(२२४) गज़ल

हमन है इश्क मस्ताना हमनको होशियारी क्या ?

रहैं आजाद या जगमें, हमन दुनियाँसे यारी क्या ?

जो बिछुड़े हैं पियारेसे, भटकते दर-बदर फिरते।
हमारा यार है हममें, हमनको इंतजारी क्या?
ख़लक सब नाम अपनेको, बहुत कर सर पटकता है।
हमन हरि-नाम राँचा है, हमन दुनियाँसे यारी क्या?
न पल बिछुड़ें पिया हमसें, न हम बिछुड़ें पियारेसे।
उन्हींसे नेह लागा है, हमनको बेक़रारी क्या?
कबीरा इश्कका माता, दुईको दूर कर दिलसे।
जो चलना राह नाजुक है, हमन सर बोझ भारी क्या?

(२२५) राग काफी

कौन मिलावै मोहिं जोगिया हो,
जोगिया बिन रह्यो न जाय ॥टेक॥
हौं हिरनी पिय पारधी हो, मारे सबदके बान।
जाहि लगी सो जान ही हो, और दरद नहिं जान ॥
मैं प्यासी हौं पीवकी हो, रटत सदा पिय पीव।
पिया मिलै तो जीव है, नातो सहजै त्यागों जीव ॥
पिय कारन पियरी भई हो, लोग कहैं तन रोग।

छह छह लाँघन मैं किया रे, पिया मिलनके जोग ॥
कह कबीर, सुनु जोगिनी हो तनमें मनहिं मिलाय ।
तुम्हरी प्रीतिके कारने हो, बहुरि मिलहिंगे आय ॥

(२२६)

अबिनासी दुलहा कब मिलिहौ भगतनके रछपाल ॥
जल उपजी जलहीं सों नेहा, रटत पियास पियास ।
मैं ठाढ़ी बिरहिन मग जोऊँ, प्रियतम तुमरी आस ॥
छोड़े गेह नेह लगि तुमसों, भई चरन लौलीन ।
ताला-बेलि होति घट भीतर, जैसे जल बिन मीन ॥
दिवस न भूख रैन नहिं निंदिया, घर अँगना न सुहाय
सेजरिया बैरिन भई हमको, जागत रैन बिहाय ॥
हम तो तुमरी दासी सजना, तुम हमरे भरतार ।
दीनदयाल दया कर आवो, समरथ सिरजनहार ॥
कै हम प्रान तजत हैं प्यारे, कै अपनी कर लेव ।
दास कबीर बिरह अति बाढ़्यो, हमको दरसन देव॥

(२२७)

प्रीति लगी तुव नामकी, पल बिसरै नाहीं ।
नजर करो अब मेहरकी मोहि मिलौ गुसाईं ॥
बिरह सतावै हाय अब जिव तड़पै मेरा ।
तुम देखनको चाव है प्रभु मिलौ सबेरा ॥
नैना तरसैं दरसको पल पलक न लागै ।
दरदबंद दीदारका निसि बासर जागै ॥
जो अबके प्रीतम मिलैं करूँ निमिष न न्यारा ।
अब कबीर गुरु पाँइया मिला प्रान पियारा ॥

(२२८) राग कान्हरा—दीपचन्दी

घूँघटका पट खोल री
तोहे पीव मिलेंगे ॥—ध्रु०॥
घट घट रमता राम रमैया
कटुक बचन मत बोल रे ॥—तोहे०॥ १॥
रंगमहलमें दीप बरत हैं
आसनसे मत डोल रे ॥—तोहे०॥२॥
कहत कबीर सुनो भई साधू
अनहद बाजत ढोल रे ॥—तोहे०॥३॥

७

वैराग्य

(२२९)

मन लागो मेरो यार फकीरीमें ॥ टेक ॥

जो सुख पावों नाम-भजनमें,
सो सुख नाहिं अमीरीमें ॥ १ ॥

भला बुरा सबको सुनि लीजै,
करि गुजरान गरीबीमें ॥ २ ॥

प्रेमनगरमें रहनि हमारी,
भलि बनि आई सबूरीमें ॥ ३ ॥

हाथमें कूँड़ी बगलमें सोंटा,
चारो दिसा जगीरीमें ॥ ४ ॥

आखिर यह तन खाक मिलैगा,
कहा फिरत मगरूरीमें ॥ ५ ॥

कहत कबीर सुनो भाई साधो,
साहिब मिलै सबूरीमें ॥ ६ ॥

(२३०) राग काफी

आई गवनवाँकी सारी,
उमिरि अबहीं मोरि बारी ॥ टेक ॥

साज समाज पिया लै आये,
और कहरिया चारी।
बम्हना बेदरदी अँचरा पकरिकै,
जोरत गठिया हमारी॥
सखी सब पारत गारी॥ १॥
बिधिगति बाम कछु समुझि परति ना,
बैरी भई महतारी।
रोय रोय अँखियाँ मोरि पोंछत,
घरवासे देत निकारी॥
भई सबको हम भारी॥ २॥
गौन कराय पिया लै चालै,
इत उत बाट निहारी।
छूटत गाँव नगरसों नाता,
छूटै महल अटारी।
कर्म गति टरै न टारी॥ ३॥
नदिया किनारे बलम मोर रसिया,
दीन्ह घूँघट पट टारी।

थरथराय तनु काँपन लागे,
काहु न देख हमारी ॥
पिया लै आये गोहारी ॥ ४ ॥

(२३१)

हमकाँ ओढ़ावैं चदरिया, चलती बिरिया ।
प्रानराम जब निकसन लागे,
उलटि गई दोउ नैन पुतरिया ॥ १ ॥
भीतरसे जब बाहर लाये,
छूट गई सब महल अटरिया ।
चार जने मिलि खाट उठाइनि,
रोवत ले चले डगर डगरिया ॥ २ ॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो
संग चली वह सूखी लकरिया ॥ ३ ॥

(२३२) राग काफी

या बिधि मनको लगावै, मनके लगाये प्रभु पावै ॥
जैसे नटवा चढ़त बाँसपर, ढोलिया ढोल बजावै ।

अपना बोझ धरे सिर ऊपर, सुरति बरतपर लावै ॥
जैसे भुवंगम चरत बनहिंमें, ओस चाटने आवै ।
कबहुँ चाटै कबहुँ मनि चितवै, मनि तजि प्रान गँवावै
जैसे कामिनि भरे कूप जल, कर छोड़े बतरावै ।
अपना रंग सखियन सँग राचै, सुरति गगरपर लावै ॥
जैसी सती चढ़ी सत ऊपर, अपनी काया जरावै ।
मातु पिता सब कुटुँब तियागै, सुरति पिया घर लावै॥
धूप दीप नैवेद्य अरगजा, ज्ञानकी आरत लावै ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, फेर जन्म नहिं पावै॥

(२३३) राग पीलू-दीपचन्दी

तन धनकी कौन बड़ाई ।
देखत नैनोंमें माटी मिलाई ॥ध्रु०॥
अपने खातर महल बनाया ।
आपहि जाकर जंगल सोया ॥ १ ॥
हाड़ जले जैसे लकरिकी मोली ।
बाल जले जैसे घासकी पोली ॥ २ ॥

कहत कबीरा सुन मेरे गुनिया ।
आप मुवे पिछे डूब गई दुनिया ॥ ३ ॥

(२३४)

ऐसी नगरियामें किहि बिध रहना ।
नित उठ कलंक लगावै सहना ॥ १ ॥
एकै कुवाँ पाँच पनिहारी ।
एकै लै जुर भरे नौ नारी ॥ २ ॥
फट गया कुवाँ बिनस गई बारी ।
बिलग भई पाँचो पनिहारी ॥ ३ ॥
कहैं कबीर नाम बिनु बेरा ।
उठ गया हाकिम लुट गया डेरा ॥ ४ ॥

वेदान्त

(२३५)

दरस दिवाना बावला अलमस्त फकीरा ।
एक अकेला है रहा अस मतका धीरा ॥

हिरदेमें महबूब है, हरदमका प्याला।
पीवेगा कोइ जौहरी गुरु-मुख मतवाला॥
पियत पियाला प्रेमका सुधरे सब साथी।
आठ पहर झूमत रहै जस मैगल हाथी॥
बंधन काट मोहके बैठा निरसंका।
वाके नजर न आवता, क्या राजा क्या रंका॥
धरती तो आसन किया, तम्बू असमाना।
चोला पहिरा खाकका रह पाक समाना॥
सेवकको सतगुरु मिले कछु रहि न तबाही।
कह कबीर निज घर चलो जहँ काल न जाही॥

(२३६)

रस गगन गुफामें अजर झरै।
बिन बाजा झनकार उठै जहँ
समुझि परै जब ध्यान धरै॥ १॥
बिना ताल जहँ कमल फुलाने,
तेहि चढ़ि हंसा केलि करै।

बिन चंदा उजियारी दरसै
जहँ तहँ हंसा नजर परै ॥ २ ॥
दसवें द्वारे ताली लागी
अलख पुरख जाको ध्यान धरै ।
काल कराल निकट नहिं आवै,
काम क्रोध मद लोभ जरै ॥ ३ ॥
जुगन जुगनकी तृषा बुझाती
करम भरम अघ ब्याधि टरै ।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो,
अमर होय, कबहूँ न मरै ॥ ४ ॥

प्रकीर्ण

(२३७)

रमैयाकी दुलहिन लूटा बजार ।
सुरपुर लूट नागपुर लूटा,
तीन लोक मच हाहाकार ॥ १ ॥

ब्रह्मा लूटे महादेव लूटे,
नारद मुनिके परी पिछार ।
सिंगीकी भिंगी करि डारी,
पारासरके उदर बिदार ॥ २ ॥
कनफूँका चिदकासी लूटे,
लूटे जोगेसर करत बिचार ।
हम तो बचिगे साहब दयासे,
सब्द डोर गहि उतरे पार ॥ ३ ॥
कहत कबीर सुनो भई साधो,
इस ठगनीसे रहो हुसियार ॥ ४ ॥

(२३८)

डर लागै औ हाँसी आवै अजब जमाना आया रे ॥
धन दौलत ले माल खजाना, बेस्या नाच नचाया रे ।
मुट्ठी अन्न साधु कोई माँगै, कहैं नाज नहिं आया रे ॥
कथा होय तहँ स्रोता सोवैं, वक्ता मूँड़ पचाया रे ।
होय जहाँ कहिं स्वाँग तमासा, तनिक न नींद सताया रे

भंग तमाखू सुलफा गाँजा, सूखा खूब उड़ाया रे।
गुरुचरनामृत नेम न धारै, मधुवा चाखन आया रे॥
उलटी चलन चली दुनियामें, ताते जिय घबराया रे।
कहत कबीर सुनो भाई साधो का पाछे पछताया रे॥

(२३९)

बाबू ऐसो है संसार तिहारो, है यह कलि ब्यवहारा।
को अब अनख सहै प्रतिदिनको नाहिन रहन हमारा
सुमति सुभाव सबै कोइ जानै, हृदया तत्त न बूझै।
निरजीव आगे सरजिव थापे, लोचन कछुव न सूझै॥
तजि अमरत बिष काहे अँचवूँ गाँठी बाँधूँ खोटा।
चोरनको दिय पाट सिंहासन साहुहिं कीन्हों ओटा॥
कह कबीर झूठो मिलि झूठा ठग ही ठग ब्यवहारा।
तीन लोक भरपूर रह्यो है, नाहीं है पतियारा॥

ॐ

गीताप्रेस, गोरखपुरका सूचीपत्र

(धार्मिक पुस्तक और चित्र-प्रकाशक)

१–गीता शांकर-भाष्य, सजिल्द २॥)
कपड़ेकी जिल्द २॥।)
२–गीता बड़ी, सानुवाद १।)
३–गीता बड़ी (गुजराती) १।)
४–गीता बड़ी (मराठी) १।)
५–गीता मझोली (बंगला) ।॥)
६–गीता मझोली ॥≡) सजिल्द ॥।=)
७–गीतामोटे अक्षर-वाली ॥)स० ॥≡)
८–गीता मूल ।–) सजिल्द ।≡)
९–गीताभाषा ।)स०।=)
१०–श्रीपञ्चरत्नगीतास०।)
११–गीता छोटी =)॥ सजिल्द ≡)॥
१२–गीता ताबीजी सजिल्द =)
१३–गीता मूल विष्णु-सहस्रनामसहित सजिल्द –)॥
१४–गीताका सूक्ष्म-विषय –)।
१५–गीता दो पन्नेकी –)
१६–गीता २रा अध्याय)।
१७–गीता पद्यानुवाद (कृष्णविज्ञान) ।॥) सजिल्द १)
१८–गीताडायरी ।) सजिल्द ।–)
१९–ईशावास्योपनिषद् ≡)
२०–केनोपनिषद् ॥)

पुस्तकों और चित्रोंका सूचीपत्र मुफ्त मँगाइये ।

२१–कठोपनिषद् ॥-)
२२–प्रश्नोपनिषद् ।≤)
२३–मुण्डकोपनिषद् ।≤)
२४–पाँचो उपनिषद् एक जिल्दमें सजिल्द (उपनिषद्-भाष्य खण्ड १) २।-)
२५–माण्डूक्योपनिषद् १)
२६–तैत्तिरीयोपनिषद् ॥।-)
२७–ऐतरेयोपनिषद् ।=)
२८–उपर्युक्त तीनों उपनिषद् एक जिल्दमें सजिल्द (उपनिषद्-भाष्य खण्ड २) २।=)
२९–विष्णुपुराण सटीक सचित्र, सजिल्द २॥) कपड़ेकी जिल्द २॥।)
३०–अध्यात्मरामायण सचित्र, सजिल्द १॥।) कपड़ेकी जिल्द २)
३१–प्रेम-योग १।) सजिल्द १॥)
३२–श्रीतुकाराम-चरित १≤) स० १॥)
३३–भक्तियोग १=)
३४–भागवतरत्न प्रह्लाद १) स० १।)
३५–विनय-पत्रिका सटीक १) स० १।)
३६–गीतावली सटीक १) सजिल्द १।)
३७–श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली खण्ड १ ॥।=) स० १=)
३८–,, खण्ड २ १=) सजिल्द १।=)
३९–,, खण्ड ३ १) सजिल्द १।)
४०–,, खण्ड ४ ॥=) सजिल्द ॥।=)
४१–,, खण्ड ५ ॥।) सजिल्द १)

६९–विवेक-चूड़ामणि ।–)
सजिल्द ॥)
७०–गीतामेंभक्तियोग ।–)
७१–प्रेम-दर्शन (नारद-भक्तिसूत्र) ।–)
७२–भक्त बालक ।–)
७३–भक्त नारी ।–)
७४–भक्त-पञ्चरत्न ।–)
७५–भक्त-चन्द्रिका ।–)
७६–आदर्श भक्त ।–)
७७–भक्त-सप्तरत्न ।–)
७८–भक्त-कुसुम ।–)
७९–प्रेमी भक्त ।–)
८०–यूरोपकी भक्त स्त्रियाँ ।)
८१–कल्याण-कुञ्ज ।)
८२–परमार्थ-पत्रावली ।)
८३–माता ।)
८४–ज्ञानयोग ।)
८५–व्रजकी झाँकी ।)
८६–बदरी-केदारकी झाँकी ।)
८७–प्रबोध-सुधाकर ≋)॥
८८–मानव-धर्म ≋)
८९–साधन-पथ =)॥
९०–गीता-निबन्धावली =)॥
९१–वेदान्त-छन्दावली ≋)॥
९२–मनन-माला =)॥
९३–प्रयाग-माहात्म्य =)॥
९४–माघ-मकर-प्रयाग-स्नान-माहात्म्य =)॥
९५–अपरोक्षानुभूति =)॥
९६–शतश्लोकी सटीक =)
९७–भजन-संग्रह प्रथम भाग =)
९८– ,, द्वि० भाग =)
९९– ,, तृ० भाग =)
१००– ,, च० भाग =)
१०१– ,, पं० भाग =)
१०२–गोपी-प्रेम –)॥
१०३–स्त्रीधर्मप्रश्नोत्तरी –)॥

पता—गीताप्रेस, गोरखपुर